सिद्धयोग

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्तों और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

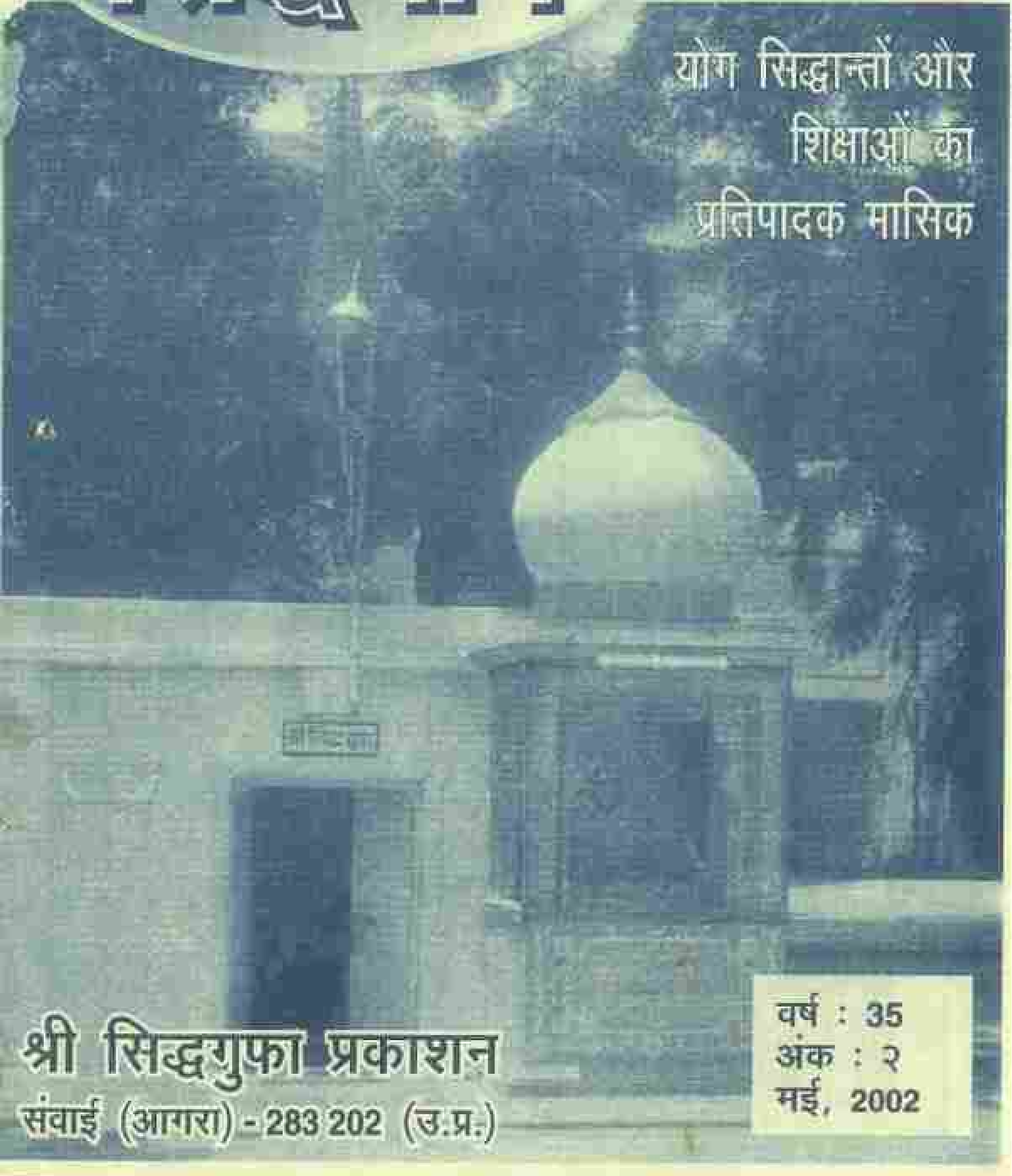

वर्ष : 35
अंक : २
मई, 2002

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा) - 283 202 (उ.प्र.)

SIDDHYOG MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु०	9-00
वार्षिक शुल्क	रु०	90-00
द्विवार्षिक	रु०	170-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

- अमृत कण 2
- दैवी सम्पदा धारण करो (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 8
- प्रकृति के तीन गुण ही जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं
  ब्र० ओमप्रकाश शर्मा 10
- शिव सूत्र-विमर्श
  डा० विजय सिंह 13
- अकाल मृत्यु से प्राण रक्षा
  केशवदेव उपाध्याय 16
- श्रीकृष्ण जन्म सद्शिक्षा के साथ
  राजेश कुमार श्रीवास्तव 19
- भजन
  डा० कृष्णवीर सिंह तोमर 24
- अजपा-जप एवं षट्चक्रों के देवता
  द्वारका प्रसाद शर्मा 25
- गुरु माहात्म्य 27
- सा विद्या या विमुक्तये
  पं० महेश बोहरे 29
- महाप्रयाण के पश्चात् बारह वर्ष
  अवनीश भटनागर 31
- रामानुराग
  पं० महेश बोहरे 33
- स्वास्थ्य चर्चा 35

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 35
अंक 2

मई
2002

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/१९

अर्थात्

वह परमात्मा हाथ पैरों से रहित होकर भी समस्त वस्तुओं को ग्रहण करने वाला तथा वेग पूर्वक सर्वत्र गमन करने वाला है, आँखों के बिना ही वह सब कुछ देखता है और कानों के बिना ही सब कुछ सुनता है। वह जो कुछ भी जानने में आने वाली वस्तुएँ हैं उन सबको जानता है। परन्तु उसको जानने वाला कोई नहीं। ज्ञानी पुरुष उसे महान आदि पुरुष कहते हैं।

अमृत कण

अनभ्यासे विसं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम्।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणो विसम्।।

–चाणक्यनीति

बिना अभ्यास के शास्त्र विष के समान है, अजीर्ण हो तो भोजन करना विष के समान है, दरिद्र के लिए सभा-समाज विष के समान है और वृद्ध व्यक्ति के लिए तरुणी विष के समान है।

* * *

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

–श्रीमद् भगवद्गीता

मनुष्य का मन विषयों का चिन्तन करता है, विषयों का चिन्तन करते रहने से विषयों में आसक्ति पैदा होती है, आसक्ति से विषयों की कामना उत्पन्न होती है, और कामना पूर्ति में बाधा पड़ने से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से मूढ़ता यानि मोह पैदा होता है, मूढ़ता से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है, स्मृति भ्रम से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होने से मनुष्य भ्रष्ट आचरण यानि भ्रष्टाचार करने लगता है।

* * *

ईर्ष्यी घृणीत्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्य शंकितः।
पर भाग्योपजीवी च षडेते दुःख भागिनः।।

–हितोपदेश

दूसरों से ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी सदा शक करने वाला और दूसरों के आसरे जीने वाला–ये छः व्यक्ति इस दुराचरण के कारण, सदा दुःखी रहते हैं।

* * *

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शंकितः।
नोद्यमे विरमेत्क्वपि हेतावीर्ष्यत्फले न तु।।

–भावप्रकाश ५–२५८

अकेले सुख का भोग न करके, दूसरों को सुख भोग कराते हुए स्वयं सुख भोगना चाहिये। सबके ऊपर विश्वास या सन्देह न करके सोच समझकर उचित व्यवहार करना चाहिये। उद्योग करना न छोड़ें और दूसरे की उन्नति और सम्पन्नता से ईर्ष्या न करें।

▢ विशेष लेख

दैवी सम्पदा धारण करो

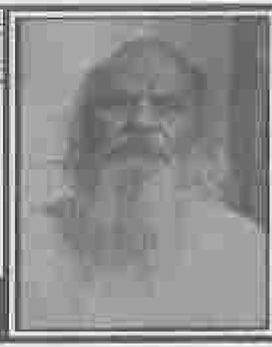

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भगवान् ने सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पत्ति एवं आसुरी सम्पत्ति का वर्णन किया है और निर्णय में कह दिया **''दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धाय आसुरी मता''** अर्थात् दैवी सम्पत्ति मुक्ति की ओर ले जाती है और आसुरी सम्पत्ति बन्धन का कारण होती है। इसलिये हर व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने आप को दैवी सम्पत्ति की ओर ले जाने का प्रयत्न करे। मैं इस बात को तुम्हें प्रायः समझाया करता हूँ कि योग दर्शन के प्रारम्भ में व्यास जी महाराज ने गुणों के अनुरूप हर प्राणी की अवस्था बताई है। तमोगुण वाले मुढावस्था के प्राणी होते हैं। राक्षसी प्रवृत्ति के लोग होते हैं। दूसरे क्षिप्तावस्था के प्राणी रजोगुण प्रधान होते हैं, यह लोग संसारी व्यक्ति होते हैं। सोलहवें अध्याय में ही भगवान ने आसुरी सम्पत्ति के लोगों का वर्णन किया है। **''इदमद्य मया लब्धम् इमं प्राप्स्ये च मनोरथम'' ''असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।''** आज मैंने यह प्राप्त कर लिया है, आगे अब मैं यह प्राप्त करूँगा, ''अमुक शत्रु को मैंने मार दिया है अब दूसरे को भी मार दूँगा।'' इस प्रकार के विचार वाले व्यक्ति घोर रजोगुणी होते हैं। उसकी दृष्टि में परलोक कोई चीज नहीं। वे कहते हैं स्वर्ग नरक कुछ नहीं हैं। वे लोग तो **''यावज्जीवेत सुखी जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत''** के सिद्धान्त वाले होते हैं। उससे आगे तीसरे प्रकार के प्राणी विक्षिप्तावस्था के सतोगुण प्रधान प्राणी होते हैं। वे कुछ करना चाहते हैं; किन्तु कर नहीं पाते। ठीक रास्ता नहीं मिल पाता इस अवस्था वाले प्राणी में भी एकाग्रता नहीं होती। इससे आगे चौथे प्रकार के एकाग्रावस्था के प्राणी होते हैं। उनमें सतोगुण का पूर्ण उदय हो जाता है। एकाग्रता को पाकर वे लोग कृतार्थ और निहाल हो जाया करते हैं। गीता के सोलहवें अध्याय के प्रारम्भ में जो लोग पूर्ण सतोगुण प्रधान हो जाते हैं, उनकी प्रकृति और स्वभाव कैसा होता है, उन दैवी सम्पदा वाले मनुष्यों में क्या-क्या बातें होती हैं-यह भगवान ने बताई हैं। ये तुम ध्यान से सुनो। सबसे पहली सम्पत्ति है-**अभयम्**-अर्थात् अभय अपने मनों में सोचो, डर किसको लगता है ? डर पापी अपराधी को लगता है। जो कुकर्म करता है वह सोचता है कोई मुझे देख न ले, जान न जाये। जो व्यक्ति सत्य पर चलने वाला है, पाप रहित है, वह निडर रहता है। पापी ही डरता रहता है। मुझे सजा न हो जाये, समाज में मेरी बदनामी न हो जाये उसको किसी न किसी प्रकार का भय लगा ही रहता है। किन्तु जो निर्द्वन्द्व हैं उसको कोई भय नहीं होता। धर्मात्मा व सत्य परायण व्यक्ति भय रहित होता है। भगवान के भक्त सर्वत्र अपने इष्ट देव को ही देखते हैं।

सर्व भूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि-ऐसे व्यक्ति को डर किसका ? वह देखता है सब

में मैं ही हूँ। मैंने तुम्हें समाधि वर्णन के प्रकरण में आनन्दानुगत समाधि के विषय में बताया था कि आनन्दानुगत में योगी आनन्द में ही मग्न रहा करता है। उसके चारों ओर गोलियाँ चल रही हों, कत्ले आम हो रहा हो, उसे भय नहीं होता। हमारे बड़े गुरु भाई योगिराज मुल्खराज जी पर जब श्री प्रभु जी ने शक्तिपात किया, तो आठ महीने तक उनकी आँखे बन्द ही रहीं। हर वक्त ध्यान ही ध्यान में लीन रहा करते थे जिस समय श्री प्रभु जी बाजार आदि जाते थे, तो वह भी दौड़-दौड़ कर उनके आगे जाते थे, श्री गोपालानन्द जी ने श्री प्रभु जी से प्रश्न किया-प्रभु जी ! क्या बात है बाजार में ताँगे, इक्के मोटर गाड़ियाँ चलती है इतनी भारी भीड़ में इस हाट बाजार में भाई जी बन्द आँखों से कैसे तेजी से चल लेते हैं। इनकी किसी से टक्कर नहीं होती ? ''इसका उत्तर देते हुये श्री प्रभु जी ने कहा-'' इसका ड्राईवर संसार के ड्राईवरों से बहुत होशियार है। वह किसी से टक्कर होने नहीं देगा। कारण कि वह सर्वव्यापक शक्ति में लीन रहते थे। व्यापक सत्ता का अनुभव करते थे।'' एक बार ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी और मुल्खराज जी को लेकर श्री प्रभु जी काँगड़ की पहाड़ी पर गये। इन दोनों की आँखें बन्द थी, जिन लोगों को ध्यान में आँखें बन्द हो जाती हैं, बाह्य दृष्टि वाले लोग इसको ढोंगी समझते हैं। भस्त्रिका भी चल रही थी। घूमने वाले कुछ लोग पहाड़ की चोटी पर पहुँचे वे प्रभु जी से कहने लगे-''दिन समाप्त होने को आ रहा है, यह आप के चेले नीचे कैसे पहुँचेंगे। इनकी आँखे तो बन्द हैं। यह नीचे चल ही नहीं सकेंगे।'' प्रभु जी हंस कर कहने लगे। ''ये तुम लोगों से पहले नीचे पहुँचेंगे।'' वे लोग आश्चर्य मानने लगे कि कैसे पहुँचेंगे। श्री प्रभु जी ने उन दोनों को खड़ा कर दिया और पहाड़ की चोटी पर ले जाकर उन्हें वहाँ से धकेल दिया ! वे लोग देखते रहे कि कैसे योगिराज हैं इनको दया नहीं आई, इस प्रकार से नीचे धकेल दिया। यह तो मर जायेंगे। किन्तु उन्होंने देखा-मुल्खराज जी तो इस प्रकार नीचे आये, जैसे चील या और कोई पक्षी आकाश से उड़ता हुआ नीचे की ओर आता है। और गोपालानन्द जी मेंढक की तरह फुदकते हुये, एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर कूदते हुये नीचे आ गये और नीचे आकर दोनों खड़े हो गये। अन्य लोग जो ऊपर थे, कई घण्टे बाद नीचे उतर पाये। वे लोग उत्सुकता से आकर देखने लगे कि इनके हाथ पैर अवश्य टूट गये होंगे ? किन्तु वे दोनों बिल्कुल ठीक थे। यह है **''अभयम्''** पहाड़ से नीचे डाल दिया गया। किन्तु, उन्हें कोई डर नहीं था प्रह्लाद को आग में डाल दिया गया, होलिका जल गई। किन्तु प्रह्लाद सुरक्षित बच गये। इस प्रकार से दैवी सम्पत्ति वालों में स्वभाव से ही ''अभय'' रहता है। दूसरी सम्पत्ति है **''सत्व संशुद्धि''** अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि। जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया हो वे हर समय ध्यान में बैठे रहते हैं। उनको ध्यान में ही प्रवृत्ति रहती है। ध्यान में बैठने से सतोगुण बढ़ जाता है। सत्व से ही ज्ञान होता है, प्रेम होता है प्रकाश होता है। आनन्द सतोगुण का भाव है। मुझे एक घटना याद आ गई। एक बार श्री प्रभु जी वृन्दावन में गौर दाऊ जी के मन्दिर में गये। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी व अन्य कुछ गुरु भाई साथ थे। वहाँ एक कमरा ले लिया और ठहर गये। वहाँ किसी बृजवासी ने आकर गीत गाया यह गीत मशहूर है-

''हमारी तिहारी नाहिं बने गिरधारी। तुम हो बाबा नन्द के छोरा, हम वृषभान दुलारी''।

उस बृजवासी ने गीत गाया कि ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी चट धड़ाम से जमीन पर गिर गये और बेहोश हो गये। भस्त्रिका चलने लगी वे कांपने लगे। बृजवासी डर गया–महाराज ! दौरा पड़ गया, दौरा पड़ गया। '' प्रभु जी कहने लगे–बता ! तुमने मेरे लड़के को क्या कर दिया। ''वह बृजवासी बेचारा घबरा गया। बाद में फिर प्रभु जी ने उससे कहा–''नहीं बेटा ! तुमने कुछ नहीं किया है। इसमें प्रेम भाव प्रबल है, इसलिये ऐसा हुआ है। इसके बाद श्री प्रभु जी ने गोपालानन्द को उठा दिया और कह दिया जा ! ''श्री ब्रह्मचारी जी सीधे चले गये और उस जेठ की तपती रेत में यमुना किनारे बालू में पड़ गये। तीन दिन तीन रात उसी अवस्था में पड़े रहे। चौथे दिन वापिस आये। एक बार मुरादाबाद में अपने बहनोई श्री चण्डी प्रसाद के घर पर भी पाँच दिन तक ऐसे ही पड़े रहे। मालूम पड़ता है कि ये मर गये है। क्या हम इनका संस्कार कर दे ?'' प्रभु जी ने तुरन्त जवाब दिया। खबरदार ! तुम उसे कुछ नहीं करना, उसी प्रकार पड़े रहने दो वह समाधि में है, अपने आप उठ जायेगा। छठे दिन वह अपने आप उठ गये। योगी आनन्दानुगत समाधि में आनन्द से भर जाता है। उसके पास जो भी आता है उसके रंग में रंग जाता है। वह उस मस्ती में शेर, चीते, बिच्छू को पकड़ता है प्यार करने लगता है। इसलिये प्रेम योग से ही आता है। उसी का जीवन आनन्द मय होता है। अस्तु ! उससे आगे की सम्पत्तियाँ हैं **''दानम् दमश्च यज्ञश्च''** दैवी सम्पदा वालों में दम की प्रवृत्ति होती है। **''दमश्च''** इन्द्रियों पर वे नियन्त्रण रखते हैं। **''यज्ञश्च''** बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, अनुष्ठान करते हैं, व्रत करते हैं। **'स्वाध्यायः'** स्वाध्याय में लगे रहते हैं। मैंने तुम्हें स्वाध्याय का अर्थ बताया था–'' प्रणवादि मन्त्रों का जाप करना स्वाध्याय है और मुक्तिदाता शास्त्रों का पठन-पाठन स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय शील व्यक्ति विष्णु सहस्र नाम का पाठ करते हैं भूख प्यास गर्मी को सहन करके अपनी साधना में लगे रहते हैं। 'आर्जवम्' सम्पत्ति के अभिमान में किसी को दुःख नहीं देते। वे लोग विनम्र होते हैं, झुके रहते हैं। मुझे एक व्यक्ति की बात याद आ गई। कलकत्ते में हरियाणा भवन में हमारा योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। सत्संग का कार्यक्रम चला हुआ था। एक व्यक्ति अरब खरब के मालिक थे। नाम था उनका सोहन लाल दुग्गड़। वह सत्संग में आये और सबसे पीछे बैठ गये। हमारे सत्संगियों ने मुझसे कहा– **''महाराज जी ! दुग्गड़ साहब आये हैं, इन्हें आगे बुला लीजिये।''** मैंने कहा– ''मैं तो दुग्गड़ साहब को जानता नहीं जो दुग्गड़ साहब हो, वह आगे आ जायें। वह वहीं खड़े हो गये और कहने लगे–'' महाराज जी! मैं सोहन लाल आप का सेवक हूँ। साहब नहीं। मैं यहीं पर ठीक हूँ। पीछे ही रहूँगा। इतनी सम्पत्ति पाकर भी अभिमान का लवलेश नहीं, इसको कहते हैं–'आर्जवम्' लोग थोड़ी सम्पत्ति पाकर गर्जते हैं, दूसरे को डाँटते हैं, फटकारते हैं। **''अहिंसा सत्यम क्रोधः''** दैवी सम्पत्ति वालों में अहिंसा वृत्ति होती है। वह मन, वाणी और कर्म से किसी को दुःख नहीं देता। वह व्यक्ति बहादुर है जो दूसरे के तीन सहन करके भी, कड़वी वाणी को सह करके भी, उसका भला करे, वही सच्चा अहिंसक है। 'सत्यम' सत्य बोलो।

''सत्यंब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्। न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'' अर्थात् सत्य बोले, किन्तु कड़ुवा सत्य

कभी न बोले। प्यारा झूठ बोल-बोल कर लोग ठकुर सुहाती करते हैं। जय चन्द पृथ्वी राज को बहकाता रहा। यही हार का कारण बना। इसलिये प्यारा झूठ न बोले। **''अक्रोध:''** अर्थात् क्रोध का त्याग कर दे। **''त्याग''** की भावना सदा मन में रखें। आत्मध्यान परायण को यदि कोई अन्न खिला देता है, तो वह उसके कल्याण का कारण बन जाता है। लुधियाने में हमारे सत्संगी बच्चे राजा राम अग्रवाल थे। रेशमी कपड़े की दुकान थी। एक योगी दोपहर के समय वहाँ आये, चेहरे से तेज चमक रहा था। उन्हें भूख लगी हुई थी। किन्तु, किसी से कुछ माँगते नहीं थे। राजा राम ने उनसे भोजन के लिये आग्रह किया। किन्तु उन्होंने कहा-नहीं, मैं भोजन नहीं करूँगा। अच्छा, मुझे तुम थोड़ा दूध पिला दो। राजा राम ने दूध पिला दिया। दूध पीने के बाद योगी राजाराम से कहने लगे-''तुम माँगो, क्या चाहते हो ?'' राजा राम ने कुण्डलिनी के बारे में सुना हुआ था। कहने लगा-महाराज ! मेरी कुण्डलिनी जग जाये। उस योगी के संकल्प से राजा राम की कुण्डलिनी जग गई। किन्तु, वह कुण्डलिनी के तेज को सहन नहीं कर सके। पागल जैसे हो गये। उन दिनों हमारे लाहौर आश्रम का प्रचार काफी चल रहा था। उनके रिश्तेदार राजाराम को लेकर हमारे पास लाहौर आये। उन दिनों लाहौर में एक मशहूर वैद्य काली चरण जी हमारे पास आया करते थे। राजा राम की हालत देखकर वह कहने लगे-महाराज ! इसको आप कोई साधन न करावें, इन्हें वापिस भेज दें। इसके मौत के लक्षण हैं, आश्रम पर कलंक लग जायेगा। किन्तु हमने उसे अपने पास रख लिया। उसे नेति इत्यादि कराकर नाक से दूध पिलाया। श्री प्रभु जी ने जो हमें अधिकार दिया था, उसके अनुसार नाड़ी विशेष को दबाकर हमने उसकी कुण्डलिनी को यथा स्थान कर दिया। चार छः दिन में वह ठीक हो गया। फिर वह २०-३० वर्ष तक जीवित रहा। यह दूध पिलाने का फल था। जिस कुण्डलिनी को जगाने के लिये योगी १२-१२ साल तक अभ्यास में लगे रहते हैं, योगी के संकल्प से क्षण में ही वह जग गई। लोग ब्राह्मणों को महात्माओं को भोजन कराते हैं ताकि उनका भला हो। दैवी सम्पत्ति वाला मन में शांति धारण करे। निन्दा-चुगली न करें, चापलूसी न करे। प्राणी मात्र के प्रति मन में दया रखें इन्द्रियों की लोलुपता का त्याग करे, नम्रता रखें, लोकलाज रखें। मन में तेज को धारण करे। क्षमा भाव रखें, दण्ड देने की क्षमता होने पर भी दण्ड न देना **''क्षमा''** कहलाता है। **''धृतिः''** मन में धैर्य रखे। **''अद्रोह''** किसी से द्रोह न करें तथा अभिमान न करें। ये छब्बीस लक्षण जिनके अन्दर होते हैं, वे दैवी-सम्पत्ति वाले होते हैं। देख लो! तुम्हारे हमारे किस-किस के अन्दर ये लक्षण हैं। अब आसुरी सम्पत्ति सुन लो। **''दम्भोदर्पो अभिमानश्च''** जो ढोंग करे, लोगों को दिखाने के लिये खूब समाधि में बैठते हैं। किन्तु खूब खाते पीते रहते हैं, आनन्द में रहते हैं दिखाने के लिये समाधि लगाते हैं। जिनके अहंकृति रहती है, जो अभिमानी होते हैं। जो अत्यन्त क्रोध करते हैं बहुत कड़वी वाणी बोलते हैं, जिनके अन्तःकरण में अज्ञान भरा रहता है। ऐसे लोग आसुरी सम्पदा के होते हैं।

दैवी सम्पदा मनुष्य के मुक्ति का कारण बन जाती है। जिनका सतोगुण चमक उठता है **''ध्यान योग व्यवस्थितिः''** हर वक्त ध्यान की प्रवृत्ति बनी रहती है। उनकी **''सत्व संशुद्धि''** अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है। श्री प्रभु जी अपने मुखारविन्द से नैपाल की अपनी एक घटना

बताया करते थे। श्री प्रभु जी समाधि से उठे हुये थे। वहाँ पास में ही एक वनगाय मरी पड़ी थी श्री प्रभु जी ने उस गाय को खींच कर नीचे गड्ढे में डाल दिया। ताकि दुर्गन्ध न आये। थोड़ी देर के बाद वह गाय जी उठी और श्री प्रभु जी के पास आकर कन्धे से अपना माथा घिसने लगी। उस समय महाप्रभु जी को आवाज आती है "किससे घृणा करता है यह तो गुण धर्म है, तुम को इससे आगे जाना है"। बस ! इसके बाद वह गाय फिर मर गई। वह तो महाप्रभु जी ने ज्ञान देने के लिये जिलाई थी।

इसलिये दैवी सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये, तुम्हें गुरु मन्त्र का कम से कम (२१,०००) इक्कीस हजार जाप अवश्य करना चाहिए, नहीं तो चलते-फिरते, उठते-बैठते करते रहना चाहियें। **युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु** अर्थात् जो ठीक समय पर खाते हैं, ठीक समय पर सो जाते हैं, ठीक समय पर उठ जाते हैं, वे ही योग-साधना कर पाते हैं। थोड़ा बोलेंगे और आहार भी हल्का करोगे, मन्त्र जाप चलता रहेगा, दैवी सम्पत्ति बढ़ती चली आयेगी। इसलिये भगवान् ने जो दैवी सम्पदा के लक्षण बताये हैं इनको धारण करो। ध्यान समाधि का अभ्यास करो अपने को योग ध्यान परायण बनाओ। दैवी सम्पदा से साधक कृपा का अधिकारी बनता है योग शक्ति सुरक्षित रहती है। बार-बार सभी को आशीर्वाद।

***

इस संसार में आये हो तो अब उठो, जल्दी करो और उन उदार प्रभु की शरण में जाओ। यह देह तो देवताओं की है, धन सारा कुबेर का है, इसमें मनुष्य का क्या है ? देने-दिलाने वाला, ले जाने-लिवा ले जाने वाला तो कोई और ही है। इसका यहाँ क्या धरा है; रे मूरख ! क्यों नाशवान् के पीछे भगवान् की ओर पीठ फेरता है ?

नान्यः पन्थः विद्यतेऽयनाय

आचार्य (डा०) दासलाल शर्मा

वेद वचन है कि आत्मा अथवा परमात्मा को जाने बिना कोई भी मुक्ति-भाजन नहीं हो सकता। अतः यह सुनिश्चित तथ्य है कि मुक्ति के लिये आत्मज्ञान आवश्यक है। योग दर्शन का प्रतिपाद्य विषय आत्म दर्शन ही है। यद्यपि सारे दर्शनों का लक्ष्य आत्म ज्ञान की प्राप्ति कराना है। आत्म दर्शन के जिज्ञासु साधक के लिये आवश्यक है कि वह पहले अध्यात्म-योग का विद्यार्थी बने फिर क्रम-क्रम से योग मार्ग में आगे बढ़े। गुरुदेव भगवान अपने श्रीमुख से हमेशा ही बतलाया करते थे कि **'योगीनो योग एव उपाध्यायः'** अर्थात् योगी का योग ही गुरू होता है। ध्यानाभ्यास ही योग के रजो-तमोगुण को हटाकर उसे प्रकाश की ओर ले जाता है। अध्यात्म योग में सफलता पाने के लिये साधक के लिये यम-नियमों का पालन करना बहुत ही आवश्यक है। यम-नियम योगी की आचार संहिता है। सदाचार विहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। **'आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः'** अर्थात् यम-नियमों के सदाचरण का जो पालन नहीं करता है उसे कोई पावन नहीं बना सकता। यम-नियमों के पालन के अभाव में ही नाना प्रकार के विघ्न योग मार्ग में आया करते हैं जिससे साधक के मार्ग में अनेक अन्तराय उपस्थित हो जाया करते हैं। इसलिये अध्यात्म की प्रथम सीढ़ी यम-नियमों की साधना ही है। गुरुदेव भगवान् प्रायः ही कहा करते थे कि जो यम-नियमों का पालन नहीं करता, जिसने गुरुदेव के थपेड़े नहीं खाये हैं उसके आत्मोत्थान में विघ्न बहुत आ जाया करते हैं।

योग साधक को सर्व प्रथम योग-शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये। शास्त्र-प्रमाण, गुरु वचन एवं आत्मानुभव ये तीनों ही साधक की साधना को पुष्टि देते हैं। शास्त्र का प्रमाण योगी के लिये उत्साह वर्धन का काम करते हैं। गीता में **'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम'** अर्थात् त्याग से अखण्ड शान्ति की बात कही गई है। उस त्याग को प्राप्त करने के लिये ध्यान-योग की बहुत आवश्यकता है। क्योंकि **'ध्यानात् कर्मफलत्यागः'** ध्यान योग से ही कर्मफल का त्याग हो सकता है वाचिक कथन मात्र से नहीं। मनुष्य जीवन में धारणीय वस्तु एक ही है और वह है योग। **'धारणात् धर्मम् आहुः'** धारण किये जाने के कारण ही इसे धर्म कहा जाता है। योग से बढ़कर कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। **'अयं तु परमोधर्मः यद्योगेनात्मदर्शनम्'**। मनुष्य का परम धर्म यह है कि वह योग के द्वारा आत्मदर्शन लाभ कर ले। योग विद्या की सर्वोच्चता एवं सर्वोत्कृष्टता के कारण ही भगवान् ने गीता में संकेत दिया कि राजविद्या के साथ-साथ राजगुह्य वस्तु को योग जैसे परम गुह्य वस्तु से ही प्राप्त किया जा सकता है। योग से ही ज्ञान का उदय होता है **'योगात् संप्रज्ञायतेज्ञानम्'** योग से ही ज्ञान का प्राकट्य

होता है। जब तक व्यक्ति योग-ज्ञान को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक, दीन-हीन, दुखी एवं कंगाल ही बना रहता है। योग से ही मनुष्य कृतकार्य होता है। जिस प्रकार गीता में भगवान अर्जुन को समझाते हुये **'तस्माद्योगी भवार्जुन'** की बात कहते हैं उसी प्रकार ही हमारे आराध्य देव गुरुदेव हमेशा ही अपने बच्चों को योगी बनने की आज्ञा देते रहे हैं।

भवव्याधि के विनाश का एक मात्र उपाय गुरुदेव ने योग बतलाया है। मनुष्य योग मार्ग में प्रवेश पा जाये इसके लिये आवश्यक है कि वह अपने पुण्यों के विपुल भण्डार को संग्रहीत कर ले। तत्पश्चात ही व्यक्ति की योग मार्ग मे निष्ठा एवं श्रद्धा बन पाती है। **'जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते'** योग का जिज्ञासु भी कर्मकाण्ड के दायरे से निकलकर श्रद्धा एवं परम पुण्य का भाजन बन जाया करता है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह योग मार्ग के अक्षुण्य पुण्य को समझकर अपने को इसका पथिक बना ले। यदि जीवन में योग नहीं आया है तो मानों अन्य सारा परिश्रम व्यर्थ ही है। इसलिये सभी को योग-मार्ग का अनुसरण कर परम श्रेयस की ओर बढ़ना चाहिये।

***

तुम्हारी प्रार्थना का ध्येय क्या है ? स्वर्ग-प्राप्ति, किसी की वस्तु-सिद्धि, और दूसरों का उससे वंचित करने की कामना ! ''प्रभो ! भोजन मुझे खूब मिले ! दूसरा भले ही भूखा रहे !'' नित्य, अनन्त, शाश्वत, सच्चिदानन्दस्वरूप उस ईश्वर की कैसी भव्य कल्पना है जिसमें कोई भेद नहीं, कोई दोष नहीं, जो सदा स्वतन्त्र, निरन्तर निर्मल एवं सतत परिपूर्ण हैं ! हम उसे समस्त मानवीय लक्षणों, कार्य-व्यापारों एवं सीमाओं से आभूषित करते हैं। उसे हमारे लिए खाना देना पड़ेगा, कपड़ा देना पड़ेगा, वस्तुतः ये सारे काम हमें स्वयं करने होंगे, और कभी भी किसी ने यह सब हमारे लिए नहीं किया। यही स्पष्ट सत्य है।

प्रकृति के तीन गुण ही जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं :

ब्र० ओउम प्रकाश शर्मा, लखनऊ

प्रकृति से नाता बनाये रखने से मनुष्य प्रकृति के सत्व, रज और तम से बंध जाता है। प्रकृति का सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार रहित है; वह सुख के सम्बन्ध से और ज्ञान के सम्बन्ध से अर्थात् उसके अभिमान से बाँधता है। रागरूप रजोगुण कामना और आसक्ति से उत्पन्न वह जीवात्मा को कर्मों के और उनके फल के सम्बन्ध से बाँधता है। सब देहाभिमानियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान, वह जीवात्मा को प्रमाद-आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है। जैसा कि गीता में कहा है-

"सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति सम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।" (१४-५)

अतः प्रकृति और पुरुष के भेद को जानकर, इन्हें एक दूसरे से पृथक कर दें। प्रकृति और पुरुष-विवेक ही योग का लक्ष्य है। योगी इनके भेद को जान लेता है अर्थात् सब कर्म तो प्रकृति कर रही है, वही कर्त्ता है। आत्मा तो कर्त्ता है ही नहीं। यथा-

"प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः" कर्म तो हर हालत में प्रकृति के द्वारा हो रहे है। हम तो कर्मों को करने वाले हैं ही नहीं। जब हम कर्म कर ही नहीं रहे हैं तब फल की आशा कैसी ? सकामता कैसी, संग कैसा ? तो फिर कर्म कौन कर रहा है ? कर्म कर रही है यह त्रिगुणात्मक (सत्व, रज-तम) वाली प्रकृति इसके किए हुए कर्मों को यह आत्मा अपना किया हुआ समझता है। आत्मा तो द्रष्टा है-अकर्त्ता है, अभोक्ता है, फिर भी यह कर्त्ता, भोक्ता बना हुआ है। यह उसी प्रकार की बात है जिस प्रकार हम दूसरों के स्वजनों के दुःख में दुःखी होते हैं। इसी प्रकार सिनेमा देखते समय जो दृश्य हमारे सामने आते हैं। उनके साथ जब हम अपने को इतना एकाकार कर लेते हैं कि भोग दूसरा रहा होता है, कर दूसरा रहा होता है और भोगने हम लगते हैं। प्रकृति अपने तीनों गुणों के भोग भोगती रहे और हम अपने को उससे अलग रखें, अकर्ता द्रष्टा बने रहें यही प्रकृति-पुरुष विवेक है ज्ञान है।

मानव देह में जीव भी रहता है, और परमात्मा भी रहता है परन्तु जीव तो देह में प्रकृति के गुणों में बंधा रहता है। प्रकृति के भोग को अपना भोग मानने लगता है, लेकिन परमात्मा मानव देह में रहता हुआ भी प्रकृति के गुणों के वश में नहीं रहता वह मानव देह में रहता हुआ भी देह से अलग द्रष्टा बना रहता है। जीव को भी यही करना है। जीव की मुक्ति का अर्थ यही है कि वह परमात्मा की तरह मानव-देह में रहता हुआ भी अपने को उससे अलग समझे, भोक्ता नहीं द्रष्टा है वह। जब जीव भी माला की तरह देह से अपने को अलग समझने लगता है तब वह परमात्मा के 'साधर्म्य' में पहुँच जाता है यही तो गीता का तथा यही योग-दर्शन का लक्ष्य है। आत्मा भोक्ता

नहीं द्रष्टा है। प्रकृति कैसे पैदा हुई और कैसे भोग भोगती है अब थोड़ा इस पर विचार करना है। गीता के अनुसार जब प्रकृति में ब्रह्म (पुरुष) बीज (शक्ति) अपनी चेतना डाल देता है तब प्रकृति जो जड़ थी जो निश्चेष्ट थी, वह क्रियाशील हो जाती है और प्रकृति में क्रिया शीलता आते ही उसमें सत्व, रज, तम ये तीन गुण प्रकट हो जाते हैं। ब्रह्म का पुरुष का बीज प्रकृति में पड़ा, संसार की हर वस्तु प्रकृति से बनी है इसलिए हर वस्तु में ब्रह्म का बीज है फिर बीज ही तो विकसित होकर वृक्ष बनता है। जब यह हमारी धारणा बन जाय कि हर वस्तु में ब्रह्म का बीज है वह विकसित होकर ब्रह्म रूप धारण कर सकता है, तब हमारे जीवन का दृष्टिकोण ही बदल जायेगा।

अब थोड़ा यह समझ लिया जाय कि इस अविनाशी आत्मा को प्रकृति के ये तीनों गुण कैसे बाँधते हैं ? इन तीन गुणों में से सत्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाशक और आरोग्य कर है यह सत्वगुण आनन्द और ज्ञान के प्रति आसक्ति के कारण जीवात्मा को शरीर से बाँधता है और इसी प्रकार यह रजोगुण रागात्मक है, यह तृष्णा के प्रति आसक्ति में बाँध देता है। इसी प्रकार से यह तमोगुण अज्ञानमूलक है। यह देहधारी आत्मा को भ्रम में डाल देता है, यह जीवात्मा को लापरवाही, आलस्य और निद्रा के साथ में बाँध देता है। इस प्रकार से सत्वगुण जीवात्मा को 'सुख' में रजोगुण 'कर्म' में और तमोगुण ज्ञान को ढँककर 'प्रमाद' में लगा देता है। रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्व रजोगुण उभर आता है। सत्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण उभर आता है। जब मनुष्य की देह में इन्द्रियों के सब द्वारों में प्रकाश तथा ज्ञान का उदय हो जाता है तब यह समझ लेना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ रहा है। जब शरीर में रजोगुण की वृद्धि होती है तब लोभ, प्रवृत्ति, कार्यों का प्रारम्भ, अशान्ति और वस्तुओं की लालसा ये सब उत्पन्न हो जाते हैं और जब शरीर में तमोगुण की वृद्धि होती है तब प्रकाश का अभाव काम करने की इच्छा का अभाव लापरवाही तथा मूढ़ता प्रमाद आलस्य-ये उत्पन्न हो जाते हैं।

सत्वगुण की वृद्धि होने पर मनुष्य सामाजिक स्तर से ही नहीं ऊपर उठता बल्कि सत्व गुण में स्थिर होने से मृत्यु-मध्य लोक का प्राणी ऊपर के लोकों में जाता है। रजोगुण की वृद्धि वाले लोग मध्य में मृत्यु लोक में रहते हैं तथा तमोगुणी लोग जघन्य गुणों और जघन्य वृत्ति में पड़े हुए अधोगति अर्थात नीचे के लोकों में जाते हैं। जब द्रष्टा यह देख लेता है कि प्रकृति के इन तीन गुणों के अतिरिक्त दूसरा कोई कर्त्ता नहीं है, और इन गुणों से परे रहने वाला (जो भगवान है उसे) देख लेता है, तब वह द्रष्टा 'मदभाव' को, मेरे स्वरूप को पा लेता है। जब देहधारी आत्मा देह से उत्पन्न होने वाले इन तीन गुणों को लाँघ जाता है (इन तीन गुणों के बन्धन में नहीं बंधा रहता) तब वह जन्म-मरण वृद्धावस्था के दुःखों से मुक्त हो जाता है, और अमर जीवन को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति प्रकाश (सत्वगुण) प्रवृत्ति (रजोगुण) और मोह (तमोगुण) के उत्पन्न होने पर दुःख नहीं मानता और जब ये न हैं, तब इनके लिए इच्छा नहीं करता। जो सुख दुःख को समान समझता है, जो अपने में 'स्वस्थ' स्थिर रहता है जिसने समस्त कर्मों का आरम्भ त्याग दिया है, वह गुणातीत

कहलाता है। जो एकनिष्ठ भक्ति योग से मेरी सेवा करता है वह इन तीनों गुणों को लाँघकर ब्रह्म रूप बनने के योग्य हो जाता है। अगर प्रकृति ही कर्ता है; पुरुषकर्ता नहीं है, तो प्रकृति में कर्तव्य प्रारम्भ कैसे हो जाता है ? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार लंगड़े और अंधे की जोड़ी होती है और अंधे के कन्धे पर लगड़ा बैठ जाय तो दोनों एक दूसरे की सहायता से मार्ग पर चल देते है। उसी प्रकार अचेतन प्रकृति और सचेत पुरुष का संयोग हो जाने से सृष्टि के सब कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। यह प्रकृति एक नर्तकी की भाँति पुरुष को रिझाने के लिए प्रकृति तीनों गुणों की नानाधिकता से अनेक रूप धारण करके उसके सामने नाचती है। प्रकृति के इस नाच को देखकर मोह से भूल जाने के कारण, जब तक पुरुष इस प्रकृति के कर्तव्य को स्वयं अपना ही कर्तव्य मानता रहता है और जब तक वह सुख-दुःख के काल में स्वयं अपने को फँसा रखता है तब तक उसे मोक्ष नहीं मिलता। जिस समय पुरुष को यह ज्ञान हो जाय कि त्रिगुणात्मक प्रकृति भिन्न है और मैं भिन्न हूँ उस समय वह मुक्त ही है। क्योंकि यथार्थ में पुरुष न तो कर्ता है और न बँधा ही है, यह सब प्रकृति का ही खेल है। सांख्य शास्त्र के अनुसार उसका लक्ष्य प्रकृति तथा पुरुष का भेद-इतना भर है जहाँ इनका भेद हुआ वहाँ प्रकृति शान्त होकर बैठ जाती है और पुरुष प्रकृति के गुणों से मुक्त होकर अपने निर्गुण रूप में आ जाता है। इसी अवस्था को कैवल्य पद कहते हैं। अकेलापन-मोक्ष है। सांख्य मत से प्रकृति और पुरुष-ये दो अनादि तत्व हैं जीवन का लक्ष्य इन दोनों को अलग कर देता है। इसी का नाम कैवल्य है। सांख्य और गीता में भेद यह है कि गीता इन दोनों तत्वों को स्वतन्त्र मानती है। गीता कहती है 'प्रकृति' ब्रह्म की अपरा प्रकृति है, 'जीव' ब्रह्म का अंश है-और प्रकृति तथा पुरुष के अलग-अलग होने के ज्ञान के बाद जीव का लक्ष्य केवलतर में बैठे रहना नहीं है परन्तु ब्रह्म की तरफ आरोहण के लिए चल देना है।

सब जीवों की, सारे चराचर की जो प्रकृति है उसमें तीन गुण हैं। जिस तरह आयुर्वेद में, वात, पित्त, कफ है उसी तरह प्रकृति में सत्व, रज और तम ये तीन गुण भरे हुए हैं। सब जगह इन तीन गुणों का मसाला मौजूद है। कहीं कम, कहीं ज्यादा। जब इन तीनों से आत्मा को अलग कर लेंगे तभी देह से आत्मा को अलग किया जा सकेगा। तमोगुण को शारीरिक श्रम तथा सावधानी से, रजोगुण को स्वधर्म में मर्यादा में बने रहने से जीता जाता है और सतोगुण का पहला दोष अहंकार है, अभिमान है, घमण्ड है, दूसरा दोष शुभ कार्यों में आसक्ति है। सत्व गुण के इन दोनों दोषों को जीतने के दो उपाय हैं सतत-अभ्यास तथा आसक्ति त्याग जिस काम को बात को हम लगातार करते हैं फिर उसका अभिमान नहीं होगा। इस प्रकार से एक प्रकृति के गुण को दूसरे के द्वारा जीत कर पुरुष प्रकृति के शिकंजे से छूटकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। एक मात्र यही योग दर्शन व गीता का लक्ष्य है।

***

शिव सूत्र—विमर्श

डा. विजय सिंह

काश्मीरी त्रिक-शास्त्र की चार शाखायें हैं। १. प्रत्यभिज्ञा २. कुल ३. स्पन्द ४. क्रम। शिव-सूत्रों का रहस्यार्थ भगवान पतंजलि के योग-सूत्रों जैसा ही गूढ़ है जो मात्र गुरु-परम्परा से ही अनुभव गम्य है। शिव-सूत्र में तीन उपाय शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय बताये गये हैं। शाम्भवो पाय केवल उच्च कोटि के साधक के लिए है, जो अपने शिवत्व का चिन्तन करते हुये शाम्भवी मुद्रा में सदैव लीन तर्यातीत अवस्था को प्राप्त हुये होते हैं। आणवोपाय (आणवे-जीव) में भक्ति साधना, यम-नियमादिक व शास्त्रीय विधि द्वारा क्रमशः उच्चता को प्राप्त होकर अन्ततः आत्मसाक्षात्कार की ओर बढ़ता है। परन्तु शाक्तोपाय में साधक अपनी आन्तरिक वृत्तियों का सिद्ध-सद्गुरु प्रदत्त मंत्र-शक्ति द्वारा दमन करके आत्मलाभ सहजता से प्राप्त करता है। यह, सर्व साधारण के लिये उपरोक्त दो उपायों की अपेक्षा सरल है। क्योंकि गुरु प्रदत्त मंत्र-शक्ति एवं शक्तिपात दोनों साधारण साधक के भी मन को बलात एकाग्रता की ओर स्थिति प्रदान कर देता है।

सदाशिव स्वरूप हमारे प्रभुजी अपने दीक्षितों को लोक-परलोक, सब कुछ प्राप्ति के लिए एक ही बात कहते रहे हैं, कि तुम दिये गये मंत्र का अनन्य भाव से उठते-बैठते, चलते-फिरते हर दशा में जप करते रहे। जो तुम्हारे कल्याण का कारक है, वह तुमको दिया गया है। इस मंत्र जाप से तुम अपना ही नहीं अपितु अपने तमाम सम्पर्कीजनों का कल्याण करने में समर्थ हो सकते हो।

यं यं चिन्तयेत कामन्, तं तं प्राप्नुवेति निश्चितम्।

शिव-परम्परा का अभिनिवेश भगवान दत्तात्रेय, नाथ-सम्प्रदाय, काश्मीरी शैव-शाक्त परम्परा एवं जहाँ भी शक्तिपात की विधा है, वहाँ यही परम्परा अनुसृस्त है। श्री महाप्रभुजी के कृपा पात्र काश्मीरी पीरों, योगियों की गाथा हम सभी श्री सद्गुरु भगवान के मुख से सुनते आये हैं। हमारे वाराणसी के गुरुभाइयों की कैसे आपात संकट से काश्मीर में एक योगी ने रक्षा की और उनके नाम से सम्बोधित करते हुये अपना परिचय श्रीमहाप्रभु जी के आत्मांश श्री योगिराज चन्द्रमोहन जी के शिष्य के रूप में दिया था। कहा-तुम सभी हमारे गुरुभाई हो। हिमालय भगवान सदाशिव के कृपाकोर से ही महिमा मण्डित हैं।

अब हम शिवसूत्र विमर्श में आये सूत्रों पर विचार करें। शिवत्व क्या है ? शाम्भव मुद्रा किसे कहते हैं। देखें-

अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधतः।
जायते यः समावेशः शाम्भवोऽसावुदाहृतः।।

अर्थात-सद्गुरु कृपाकटाक्ष से स्वरूप-ज्ञान के द्वारा निर्विकल्पभाव में पहुँचे योगी को शाम्भवोपाय से प्राप्त आवेश अवस्था को शाम्भव मुद्रा कहते हैं।

शिव कौन है, उनका स्वरूप क्या है। इसके विचरण में आये सूत्र

चैतन्यमात्मा ।।१।।

अतः चेतना यही आत्मा। आत्मा में ही निरतिशय ज्ञान की अवस्था है। इस सम्बन्ध में कहा गया है–

चैतन्यमात्मनो रूपं सिद्धं ज्ञानक्रियात्मकम्।
तस्यानावृतरूपत्वाच्छिवत्वं केन वार्यते।।

शिवसूत्र वार्तिका–१५

अर्थात्–जानने की क्रिया में परम स्वतन्त्रता ही चैतन्य–आत्मा का स्वरूप है। मलत्रय रहित होने पर शिवत्व की प्राप्ती होती है।

सूत्रकार से प्रश्न होता है कि शिवत्व ही जब हमारी आत्मा है तो उसका हमें बोध क्यों नहीं है। समाधान दिया गया–

ज्ञानं बन्धः।।२।।

अनात्मा (देह, प्राण, लोक, परलोक, पुर्यष्टकादि रूप) को ही आत्मा मानना बन्धन है। विषय बोध ही बन्धन है।

इस द्वैत–बोध का कारण बताया गया।

योनिवर्गः कलाशरीरम्।।३।।

अर्थात्–माया का समूह ही द्वैत–बोध कारक बन्धन है। कलातत्त्व से पृथ्वी (स्थूलत्व) तत्व तक शुभ और अशुभ जो कर्म वासना है यह ही आत्मा का बन्धक कारक है। पशु–भाव की विद्यमानता यह, वह, मैं भेदात्मक बोध से ही है। माया–शक्ति क्या है ? स्वरूप–संकोच ही माया है। जन्म और कर्मफल भोग जीव के बन्धन का कारण है।

जीव को भूल से भी कभी अपने आत्म–स्वरूप का बोध जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति में क्यों नहीं होता। इसका कारण तीन दृढ़ मलावरण है।

ज्ञानाधिष्ठानं मातृका।।४।।

जीवत्व मल (आणवमल) मायाजनित मल और कार्ममल के कारण बहिर्मुखता प्राप्त है। जिससे द्वैत ज्ञान दृढ़मूल हुआ है। अन्तर्मुख–भाव बिल्कुल भुलाया जा चुका है।

श्री सद्‌गुरू भगवान आत्मा को अखण्ड निर्मल ज्योति तथा बुद्धिबोधात्मा (जीवात्मा) को नीले, पीले आवरण से घिरे ज्योति को नीला, पीला दीखना प्रकृत–व्यापर अथवा बुद्धि–व्यापार बताते रहे हैं। ऊपर के सूत्र में श्री प्रभुजी द्वारा दिया उदाहरण ही वर्णित है।

इन मकार्णवों से छुटकारा कैसे हो ? इस हेतु सद्‌गुरू शक्तिपात एवं मंत्र साधना को उद्यम पूर्वक पूर्ण संवेग से क्रियान्वित करने को भैरव कहा गया है–

उद्यमो भैरवः।।५।।

स्वस्वरूप को मलत्रय विमोचन करने के उद्यम को भैरव कहा गया है। साधक प्रारम्भिक अवस्था में जब तीव्र संवेग से मंत्र–जप में अपने को त्यागकर ध्यानावस्थित होने लगता है तो कभी–कभी उसे अन्तर जगत का स्फुरण स्पन्दन रूप से होने लगता है। साधक को सावधान रहना

चाहिये। जब तक देहाभिमान दूर न हो जाये तब तक धीर बन कर अभ्यासपथ पर नित नये अनुभव करते हुये अग्रसर होने के उद्यम में रहना आवश्यक है।

अतः जीव (तीनों मलों से घिरा हुआ) को दृढ़ अभ्यास से, उन्हें (मलों) शनैः शनैः शिथिल करता हुआ चिदानन्दस्वरूप शिव से एकत्व को प्राप्त होने की निरन्तर चेष्टा करते रहना चाहिए।

कहा गया है–

"तावद्दै ब्रह्म वेगेन मथनं शक्तिविग्रहे"

हठपूर्वक नियम-बद्ध होकर स्वरूप चिंतन हेतु मंत्ररूप शक्ति का तीव्रता पूर्वक मंथन करने से मलों का निवारण होता है। ज्यों-ज्यों मल शिथिल होते हैं त्यों-त्यों चिदाभास साधक को होने लगता है। मंत्र-शक्ति के तीव्रता से ही स्पन्दन शक्ति (कुण्डलनी) के उच्छलन से आत्म प्रकाश (सम्प्रज्ञात ज्योति) का अनुभव होता है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह शक्तियों का समूह है। इनके द्वारा ही बहिर्मुखता प्राप्त होती है। परन्तु मंत्रारूढ़ भाव में प्राप्त अन्तर्मुखता से इन शक्ति समूहों की तंमात्राओं का अन्तरबोध साधक को आत्म प्रतिष्ठित करने वाला है। शिवभाव से पृथ्वी (जड़) तत्व तक का शक्ति प्रसार मंत्र सानिध्यता से प्रतिलोम (उलटी) गति-वृत्ति द्वारा स्वात्म प्रतिष्ठा देने वाली है। ऐसा करने से भेदमय जगत का ह्रास और शिवभाव की प्राप्ति होती है–

शक्तिचक्रसंधाने विश्वसंहारः।।६।।

(क्रमशः)

संतों के उपकार माता-पिता के उपकार से भी अधिक हैं। सब छोटी-बड़ी नदियाँ जिस प्रकार अपने नाम-रूपों के साथ जाकर समुद्र में ऐसी मिल जाती हैं जैसे उनका कोई अस्तित्व ही न हो, उसी प्रकार त्रिभुवन के सब सुख-दुःख संतों के बोधमहार्णव में विलीन हो जाते हैं।

गुरूवर कृपा प्रसंगः-

अकाल मृत्यु से प्राण रक्षा

प्रेषक-केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

उत्तर प्रदेश के मोक्षदायिनी शहर काशी में निवास करने वाले हमारे एक गुरूभाई का नाम श्री शोकहरण पाण्डेय एवं उनकी धर्मपरायण अर्धांगिनी का नाम श्रीमती शारदा पाण्डेय है। भाई श्री शोकहरण जी सरकारी नौकरी में हैं तथा हमारी गुरूबहन श्रीमती शारदा पाण्डेय घरेलू (गृहकार्य करने वाली) महिला हैं। इनकी चार संतानें हैं जिसमें दो पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हैं। इसमें से एक सुपुत्र एवं एक सुपुत्री की शादी यह दम्पत्ति कर दिये हैं एवं सुपुत्री को करीब तीन चार साल का एक सुन्दर बालक भी है। इस दम्पत्ति ने आराध्यदेव श्री गुरूदेव जी महाराज से सन् उन्नीस सौ इक्यासी बयासी में योग दीक्षा ग्रहण की थी एवं तब से लगातार योगेश्वर द्वय (आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज तथा दादा गुरूदेव योगयोगेश्वर अनादि सिद्ध महाप्रभु जी श्री रामलाल जी महाराज) की दोनों समय प्रातः एवं सायं विधिवत् आरती पूजन एवं ध्यान किया करते हैं। कुल मिलाकर इनके पारिवारिक सदस्यों की संख्या पाँच है। पति-पत्नी, दो बालक तथा एक बालिका। उस समय जिस समय के घटनाक्रम का वर्णन किया जा रहा है, इनके पारिवारिक सदस्यों की संख्या कुल मिलाकर छह थी। श्री शोकहरण पाण्डेय जी के सबसे छोटे ताऊ का बड़ा लड़का इन लोगों के साथ रहकर अपनी पढ़ाई कर रहा था उसने अपनी इण्टरमीडिएट से लेकर ग्रेजुएशन तक की पढ़ाई इन्हीं लोगों के साथ रहकर पूरी की। इस समय वह नौकरी कर रहा है। उसकी शादी हो गयी है और उसके एक सुपुत्र भी है। जिसका नाम राहुल रखा गया है। इनके ताऊजी का वह लड़का जो इन लोगों के साथ रहता था उसका नाम श्री मदन मोहन पाण्डेय है।

यह उस समय का प्रसंग है जिस समय श्री मदन मोहन पाण्डेय ग्रेजुएशन की पढ़ाई के द्वितीय एवं तृतीय वर्ष में पढ़ता था। उस समय श्री शोकहरण पाण्डेय जी के किसी बालक बालिका की शादी नहीं हुई थी तथा सभी कक्षा पाँच की पढ़ाई से लेकर इण्टरमीडिएट कक्षा के विद्यार्थी थे। चूँकि इस दम्पत्ति की सभी संताने लोअर क्लास के विद्यार्थी थे अतः इनकी कक्षाऐं प्रातः दस बजे से आरम्भ होकर सायं चार बजे तक हुआ करती थीं इनके ताऊजी के लड़के की क्लासेज मात्र तीन घंटे, कभी दस से एक बजे तक, कभी बारह बजे से तीन बजे तक तथा कभी अपराहन दो बजे से पाँच बजे सायंकाल तक हुआ करती थीं। यह क्रम करीब दो साल तक चला। श्री शोकहरण पाण्डेयजी यद्यपि सरकारी नौकरी में हैं। परन्तु उनकी ड्युटी कुछ इस प्रकार की है कि उसका कोई निश्चित समय नहीं रहता। कभी प्रातः सात बजे से ड्युटी बारह बजे तक, कभी ग्यारह बजे से तीन बजे तक और कभी बारह बजे से सायंकाल साढ़े पाँच बजे तक हुआ करती है। संक्षेप में कहा जाय तो इनकी नौकरी इस प्रकार की है कि जब भी आवश्यकता पड़ी बुला लिये जाते हैं एवं उस कार्य के समाप्त होते ही इनकी छुट्टी हो जाती है। इनका (श्री शोकहरण पाण्डेय जी का) कार्यस्थल इनके मकान से मात्र डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। उपरोक्त दो साल की अवधि में कई बार ऐसे समय आये जबकि श्री शोकहरण पाण्डेयजी की धर्मपत्नी श्रीमती शारदा पाण्डेय एवं उनके ताऊ के ज्येष्ठ पुत्र श्री मदन मोहन पाण्डेय को एकान्त में रहने का कई-कई घण्टे लगातार समय मिला।

अपनी अनियमित नौकरी के कारण श्री शोकहरण जी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शारदा पाण्डेय को श्री मदन मोहन पाण्डेय के साथ कई बार मजाक करते, हँसते एवं आपत्तिजनक स्थिति में सटकर एक साथ बैठे देखा जिस स्थिति में शास्त्रोय मर्यादाओं के अन्तर्गत केवल पति पत्नी के ही बैठने का विधान है। इनके घर में प्रवेश करने के साथ ही दोनों अर्थात् श्रीमती शारदा पाण्डेय एवं श्री मदन मोहन पाण्डेय अपनी हरकतें बन्द कर तत्काल सामान्य अवस्था में आ जाया करते थे। अपनी आँखों से इस प्रकार के दृश्य करीब दो साल की अवधि में अनेकों बार देखने पर इनके मन में गलत भावना पैदा हो गयी। जो कि स्वाभाविक ही थी। इनकी ये मनोभावना धीरे-धीरे और प्रगाढ़ हो गयी एवं ये आत्मग्लानि करने लगे। ये सोच ही नहीं पा रहे थे कि इन दोनों का साथ कैसे छुड़ाया जाय। यह कैसे कहा जाय कि तुम दोनों के बीच अवैध सम्बन्ध हैं। न कहा जाय तो बार-बार यह दृश्य देखकर शान्त कैसे रहा जाय ? इनकी यह स्थिति करीब एक माह तक रही। आखिर इनके मन में इससे छुटकारा पाने की एक भावना आयी जो धीरे-धीरे बलवती होती गयी। इन्होंने सोचा कि 'न रहेगा बाँस और न बजेगी बांसुरी' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए इन्होंने विचार किया कि अब इस शरीर से यह सब कुछ देखना हमारे बस की बात नहीं है। एवं मैं स्पष्ट रूप से मना भी नहीं कर सकता अतः अपना प्राणान्त करके ही इस मुसीबत से छुटकारा पाऊँ। अब ये इसके समय एवं स्थान पर विचार करने लगे कि कब और कहाँ शरीर का अन्त करूँ ?

बारह जून सन् उन्नीस सौ पंचानवे को ये प्रातः तीन बजे ही उठ गये। नित्य क्रिया से निवृत होकर स्नान किया, श्री गुरुदेव भगवान एवं महाप्रभु जी की आरती की, करीब एक घण्टे तक अपने श्री गुरुमंत्र का जप किया एवं फिर करीब सात बजे घर से चाय पीकर निकले कि मैं अपनी ड्यूटी पर जा रहा हूँ परन्तु ये अपनी ड्यूटी पर नहीं गये। ये वाराणसी शहर से ट्रेन द्वारा औड़िहार जंक्शन गये जहाँ से गोरखपुर एवं बिहार जाने वाली ट्रेनों का मार्ग अलग होता है। यह जंक्शन वाराणसी शहर से करीब तीन किलोमीटर दूर पूर्व दिशा में स्थित है। वहाँ से श्री शोकहरण पाण्डेय जी गोरखपुर जाने वाली ट्रेन की लाइन के सहारे करीब चार किलोमीटर आगे गये एवं ट्रेन की लाइन से करीब दस मीटर की दूरी पर बाँयी तरफ बैठकर ट्रेन आने का इंतजार करने लगे। इन्होंने हमसे यह बतलाया कि हमने यह स्थान इसलिए निश्चित किया कि यहाँ हमारे परिवार के सदस्यों को पता भी नहीं लग पायेगा कि मैं ड्यूटी गया हूँ। परिवार के सदस्य यह सोचेंगे कि मैं ड्यूटी गया हूँ सायंकाल या रात्रि तक वापस आऊँगा एवं इधर से गुजरने वाले राहगीर सोचेंगे कि कहीं का यात्री था असावधानीवश ट्रेन के नीचे आ गया एवं कट कर मर गया। इस समय दिन के करीब नौ बज रहे थे। श्री शोकहरण पाण्डेय जी ने बतलाया कि नौ बजे तक तो हम गलत विचारों में डूबते उतराते रहे परन्तु नौ बजे के बाद अब हमने तीव्र संवेग से श्री गुरुमंत्र का जाप करना आरम्भ किया कि अब अन्त समय में तो आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज का स्मरण कर ही लूँ क्योंकि हमें श्री गुरुदेव भगवान की अमोघ वाणी याद आ रही थी कि 'अन्त मति सो गति'। अतः यह सोचने लगा कि अब तो मर ही जाऊँगा, अगला जन्म प्रभु कृपा से कहीं अच्छी जगह हो जाय।

श्री शोकहरण पाण्डेय जी इन्हीं विचारों के साथ अनवरत अपना गुरुमंत्र जप रहे थे कि गोरखपुर की ओर से तीव्र गति से एक रेलगाड़ी आती दिखायी दी। ये सावधान होकर रेल लाइन के करीब पहुँच गये। रेलगाड़ी जब मात्र चार पाँच मीटर की दूरी पर थी इन्होंने रेल पटरी पर छलांग लगायी। आश्चर्य, महान आश्चर्य ! हमारे आपके आराध्यदेव त्रिलोकीनाथ जी सद्गुरुदेव जी

महाराज आकाश मार्ग से आकर इनका दाहिना कंधा पकड़कर रेल पटरी के दाहिने तरफ करीब दो मीटर की दूरी पर खड़े हो गये। रेलगाड़ी के ड्राइवर ने इमरजेन्सी ब्रेक लगाया एवं गाड़ी गरीब दो सौ मीटर आगे जाकर रुक गयी ड्राइवर ने गाड़ी से उतरकर देखा, उसे दिखायी दिया कि राही कटने से बच गया है तो कुछ मिनट बाद अपनी ट्रेन स्टार्ट कर चलता बना। ट्रेन को तो उसने इस नीयत से रोका था कि यात्री कट कर मर गया है, उसे लादकर अगले स्टेशन पर लिखा पढ़ी कराकर उसका शव रेलवे पुलिस को सुपुर्द करना पड़ेगा परन्तु जब उसने देखा कि यात्री रेलवे लाइन के किनारे खड़ा है, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह सोच रहा था कि इसने हमारे सामने रेल पटरी पर छलांग लगायी और यह बच कैसे गया ? उस बेचारे ट्रेन ड्राइवर को क्या पता कि उसे तो अभ्यास है कि वह रेलगाड़ी चलाता है परन्तु जिसने उस यात्री को अहैतुकी कृपा कर बचाया है वह पूरी सृष्टि को चलाने वाला श्रेष्ठतम से भी श्रेष्ठ ड्राइवर है।

जब श्री सद्गुरु देव भगवान ने भाग्यवान भाई श्री शोककरण पाण्डेय जी को पकड़कर रेल लाइन से करीब दो मीटर दूर किनारे खड़ा किया तो श्री पाण्डेय जी का शरीर काँप रहा था एवं वे बोलने की स्थिति में नहीं थे। उनके बगल में खड़े श्री सद्गुरूदेव भगवान ने उनके सिर पर अपना वरदहस्त रखा एवं कहा कि शान्त हो जाओ लल्ला, शान्त हो जाओ। कुछ क्षण उपरान्त श्री शोकहरण पाण्डेय जी अपनी सहजावस्था में आये। उन्होंने श्री गुरूदेव भगवान के चिन्मय शरीर को साष्टांग प्रणाम किया। श्री गुरूदेव भगवान ने अपना वरदहस्त उठाकर उन्हें आशीर्वाद दिया। इसके बाद श्री पाण्डेय जी आराध्यदेव जी के आदेश से उठे एवं हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। श्री गुरूदेव भगवान ने कहा कि लल्ला ! आत्महत्या जैसा कोई दूसरा जघन्य पाप नहीं है। आत्म हत्या करने वाला अपगत हो जाता है एवं वह प्रेतयोनियों में भटकता फिरता है। उसका कल्याण का मार्ग बड़ा ही दुरूह बन जाता है। ऐसी गल्ती फिर कभी स्वप्न में भी मत करना। जब श्री पाण्डेय जी ने प्रार्थना करके कारण स्पष्ट करना चाहा तो श्री मुख ने कहा-'लल्ला मैं सब कुछ जानता हूँ। परन्तु एक बात तू ध्यान से सुन ले, इसी समय तुम अपने घर को लौट जाओ। इस समय तुम्हारी धर्मपत्नी एवं तुम्हारा चचेरा भाई मदन मोहन आज अन्तिम बार तुम्हें उसी स्थिति में मिलेंगे परन्तु तुम नाराज मत होना एवं ग्लानि मत करना। सीधे पूजा घर में चले जाना, श्री प्रभुजी को साष्टांग प्रणाम करना एवं आप बीती पूरी बात उन दोनों के सामने स्पष्ट शब्दों में बयान कर देना। श्री प्रभु जी कृपा करेंगे एवं आज तुम्हारी बात समाप्त होते-होते उन दोनों की वृत्ति अवश्य-अवश्य बदल जायेगी। जाओ लल्ला ! अब तुम जाओ। आदरणीय भाग्यवान भाई श्री शोकहरण जी ने श्री सद्गुरूदेव जी महाराज को फिर साष्टांग प्रणाम किया एवं प्रणाम करने के बाद घर के लिए प्रस्थान किया। भाई श्री पाण्डेय जी ने ठीक वैसा ही किया जैसा कि श्री सद्गुरूदेव जी महाराज ने उनको आदेश दिया था। श्री प्रभु जी की भविष्यवाणी भी अक्षरशः सत्य हुयी एवं उन सबों की वृत्ति बिल्कुल ही बदल गयी। श्री सिद्धयोग सम्प्रदाय के भाग्यवान साधकों को स्मरण होगा कि आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज ने अपने स्थूल शरीर का लीलावसान पच्चीस जून नब्बे को ही कर लिया था। यह प्राणरक्षा श्री गुरूदेव जी महाराज ने उसके करीब पाँच वर्षों बाद की थी इस प्रकार एक ही समय में अनेकों स्थान पर प्रकट होकर गुरूदेव भगवान अपने स्मरण एवं चिन्तन करने वालों का परम कल्याण अनवरत ही कर रहे हैं। तभी तो भगवान शंकर ने माँ पार्वती को निमित्त बनाकर उपदेश किया है-

"नास्तितत्वं गुरोः परम्"

***

श्री कृष्ण जन्म सद्शिक्षा के साथ

लेखक–राजेश कुमार श्रीवास्तव

<u>गतांक से आगे</u>

जगत हितैषिणी माता देवकी भगवान के मुखारविन्द से बच्चों के प्रति निर्मल प्रेम की प्रेरणाप्रद धारायें फूटती देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। इससे पहले उन्होंने यह विचार ही नहीं था कि बच्चों को उचित पालन-पोषण देने में भी इतनी सजगता-सावधानी और उत्तरदायित्व समझने की आवश्यकता होती है ? प्रभु हृदयस्थ विराट भावनाओं में बच्चों के प्रति गहरा वात्सल्य प्रेम देखकर उनके प्रमुदित मन में पुत्र प्रेम की अनन्त लहरें अविरल हिलोरे लेने लगीं। अपने पुत्र श्री कृष्ण की सेवा करने के लिए उनका ममत्व जाग उठा।

किन्तु तभी भाई कंस और कारागार की सजा का स्मरण होते ही उनके ओजस्वी सौम्यतापूर्ण चेहरे पर विवशता चिन्ता के काले बादल घिर आये। प्रभु ने तुरन्त उनकी भावना को जान लिया कहने लगे–

हे माता ! मेरे पालन-पोषण को लेकर तुम्हारे द्वारा चिन्ता करना व्यर्थ है। तुम्हें स्मृति नहीं रही है किन्तु मैं सब जानता हूँ तुम्हारे स्नेह-दुलार व सार्थक सच्ची सेवाओं को पहले ही प्राप्त कर चुका हूँ। पृश्नि व अदिति नाम के तुम्हारे दोनों जन्मों में मैं तुम्हारा पुत्र बन तुम्हारे सेवापूर्ण आश्रम में रह चुका हूँ।

हे माता! तुम्हारी स्नेह-दुलार से भरी विवेकपूर्ण सेवाएँ मैं तुम्हारे पूर्व के दोनों जन्मों में ग्रहण कर चुका हूँ। मैं तुम्हारी सेवाओं से पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ क्योंकि मैं दोनों ही जन्मों में तुम्हारी ही सेवा से धर्म की स्थापना करने में सफल हुआ हूँ। तुम्हारा यह जन्म तो मुक्ति के लिए हुआ है। मैं तुम्हें इसी जन्म में सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर दूँगा।

अपने प्रति भगवान का परम् स्नेह देखकर माता देवकी की आँखों से पुनः अश्रुबिन्दु टपकने लगे। वे भगवान से कहने लगीं–"हे प्रभु ! सचमुच यह जीवन कितना दुःखदायी है इसमें कहीं भी सुख नहीं है। हमारी तुच्छ सेवाओं के बदले में आपने हमें मोक्ष प्रदान करके हमारे ऊपर महान कृपा की है। जिसके लिए अनेक सिद्धपुरुष व योगीजन लालायित रहते हैं। उसे आपने हमें केवल सेवा के बदले में ही सहजता से दे दिया। मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें। हे मेरे प्रभु ! यदि हमने अपने दोनों पूर्व जन्मों में आपको सामान्य बालक समझकर आपको ताड़नात्मक व्यवहार से कष्ट पहुँचाया हो तो हे भक्तवत्सल प्रभु ! आप हमें क्षमा कर देना। यदि मैंने ऐसा किया होगा तो स्वयं को कभी क्षमा नहीं कर सकूँगी।

भगवान बोले–

हे माता ! मैं सबसे बड़ा होकर भी सबसे छोटा बनके रहता हूँ और सबसे छोटा होकर भी

सबसे बड़ा रहता हूँ। मैं न बड़ा हूँ न छोटा। मैं निराकार शुद्ध ब्रह्म हूँ जो परिस्थितियों के अनुसार छोटा-बड़ा हो जाता हूँ। मैं मात्र गौरक्षा के लिए 'ग्वाला' बन जाता हूँ। धर्म-युद्ध हेतु किसी-किसी का मित्र बनता हूँ किसी का सारथी बन जाता हूँ। गाय चराता हूँ, मुरली बजाता हूँ किसी का पुत्र बनता हूँ किसी का शिष्य बनता हूँ किन्तु मैं हर दशा में मर्यादित रहता हूँ। हे माता ! तुमने मेरी सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ी है तुमने मुझे योग्य बना कर संसार के हित में लगा दिया।

अब मेरे इस वर्तमान जन्म में मेरा पालन-पोषण मेरी मईया यशोदा करेगी जो मुझे बहुत दिनों से बुला रही है। उसका स्नेह-दुलार मुझे खींच रहा है वह मुझे गायों का दूध पिलायेगी। मुझसे बेहद प्रेम करते हुये भी, बुराई और शैतानियों से रोकने के लिए मुझे ओखली से बांध देगी किन्तु मुझे अपने लाड़-प्यार में बिगड़ने का अवसर कभी नहीं देगी। वह मेरे अन्दर पराक्रम-साहस को कूट-कूट कर भरेगी। नन्द बाबा मुझे दया, धैर्य व संयम जैसे अनेक दैवीय गुणों से भरी धर्म सम्मत कहानियाँ सुनाकर मुझे नीति और न्याय की रक्षा करने की प्रेरणा देंगे। तुम देखना माँ मैं धरती पर कितने बड़े-बड़े कार्य करूँगा जो केवल मेरे पुरुषार्थ बल से ही सम्भव हो सकेंगे।

त्रेता में माता कैकई को मेरे कारण संसार में बहुत अपमान सहना पड़ा जबकि मुझे 'भगवान राम' बनाने वाली माता कैकई ही थी। न वह वरदान माँगती और न मेरा व्यक्तित्व महान बनता। संसार में 'सौतेली माँ' केवल कैकई के चरित्र के कारण कलंकित हो गई। किसी की सौतेली माँ कितनी भी सुशील, शान्त-गम्भीर क्यों न हो, सज्जन-सहृदय क्यों न हो किन्तु लोग उसे 'सौतेली माँ' कह कर उसकी हृदयस्थ वात्सल्यता में विष घोलते रहते हैं। अनेकों ऐसे लोग हुये हैं जिन्होंने अपनी पत्नी के गुजर जाने पर यह सोचकर शादी नहीं की कि सौतेली माँ बच्चों का ठीक से पालन-पोषण नहीं करेगी उन्हें अपने दुर्व्यवहार से जीवित ही मार डालेगी।

कोई आवश्यक नहीं है हर सौतेली माँ निष्ठुर हृदय ही हो जो केवल अपने ही बच्चे का हित चाहेगी और पहली माँ के बच्चों को ठुकरा देगी। वास्तव में देखा जाय तो माँ के अभाव में घर के अन्य सदस्यों के द्वारा मिलने वाले असीमित लाड़ प्यार के कारण बच्चों के जीवन का नाश हो जाता है।

प्रायः देखने में आता है कि किसी पुरुष की पत्नी के अचानक निधन पर उस घर के सभी सदस्य जैसे-दादा-दादी, चाचा-ताऊ, बुआ-मौसी आदि लोग उस पुरुष के छोटे-छोटे बच्चों को 'हाय ! बेचारे बिना माँ के हैं' कहकर बहुत प्यार करते हैं। घर के लोगों को उनके प्रति सहानुभूति के कारण स्वाभाविक ही करुणा आती है इसका अर्थ यह नहीं कि बच्चों को इतना प्यार दिया जाय कि वे आलसी भोगी-विलासी, उद्दण्डी, असंयमी, चटोरे, व्यसनी आदि दुर्गुणों वाले बन जाय। यह अनुभव की बात है कि सौतेली माँ के अनुशासन में रहने वाले बच्चे, माता-पिता के लाड़प्यार में रहने वाले बच्चों की अपेक्षा बहुत अधिक समझदार व अनेक गुणों-योग्यताओं से सम्पन्न होते हैं।

बच्चों का पालन-पोषण यदि उनके माता-पिता ही करते हैं तो बहुत अच्छी बात है विशेष परिस्थितियों में बच्चों को उनकी दादी, नानी, बुआ, मौसी, ताई, चाची आदि कोई भी अपना सकती हैं। प्रत्येक स्त्री 'माँ' का ही स्वरूप होती है। फिर भी सावधानी के तौर पर एक बात विशेष ध्यान देने की है कि उपर्युक्त सभी स्त्रियों में कोई बच्चों से अत्यधिक मोह करने वाली न हो, नहीं तो वह बच्चों का जीवन खा जायेगी और बच्चों का केवल कंकाल मात्र ही रह जायेगा।

बच्चों को ननिहाल में बहुत ही कम छोड़ना चाहिए अधिकांशतः बच्चे नानी के यहाँ ही बिगड़ते हैं। नानी के यहाँ बच्चों पर कोई अनुशासन नहीं होता बस बेहद प्यार ही सभी से प्राप्त होता है। ऐसे बच्चे बात-बात पर रोने वाले, अड़ियल दब्बू और डरपोक स्वभाव वाले हो जाते हैं। अभिभावकों को सावधानी पूर्वक देखना चाहिए कि घर-परिवार में तथा ननिहाल में कौन-कौन से ऐसे लोग हैं जो बच्चों से मोह करने वाले, उन्हें बिगाड़ने वाले हैं, उनसे अपने बच्चों को बचाने की उन्हें पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए।

हे माता ! बच्चे तो सभी के पल ही जाते हैं लोग इसको ही समझते हैं कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया बच्चों को खिलापिला कर बड़ा कर दिया। क्या वह मानव-बच्चों का उचित पालन-पोषण है ? आचरण की सभ्यता के बिना कोई पुरुषार्थ सफल नहीं होता। बच्चों को अच्छे आचरण में ढालने पर ही सन्तानोत्पत्ति का पुरुषार्थ सार्थक होता है। वे अभिभावक जो बच्चों के मनोविज्ञान को समझ कर उचित ढंग से उनका पालन पोषण करते हैं वही सही अर्थों में ईश्वर के द्वारा पुरस्कृत किये जाने की वास्तविक पात्रता रखते हैं।

मेरी मइया यशोदा यह सब करके दिखायेगी वह मुझसे बिल्कुल मोह नहीं करेगी। मेरी हर शरारत पर मुझे ताड़ना देगी। गोपियों द्वारा मेरी शिकायत करने वह उन्हें कुछ न कहेगी बल्कि मुझे ही आँखे दिखायेगी, खबरदार करेगी, झूठ बोलने पर ओखली से बाँध देगी। नन्द बाबा के यहाँ तो हजारों गाय होंगी किन्तु माखन की चोरी करने से वह मुझे सिर्फ इसलिए रोकेगी कि मुझमें चोरी की आदत न पड़ जाय और कहीं भविष्य में एक बड़ा चोर न बन जाऊँ। फिर भी वह मुझसे अन्दर से अतिशय प्रेम करेगी। जब मैं कालीदह में कूद कर कालियानाग पर कृपा करूँगा तब वह मेरे लिए पछाड़ खा-खा कर विलाप करती हुई कालीदह की ओर पागलों की भांति ऐसे दौड़ेगी जैसे उसने ही मुझे अपनी कोख से जन्म दिया हो उसके प्रेम को देखकर देवताओं को आश्चर्य होगा। हे माता! इस प्रकार यशोदा मैया मुझे महान बनायेगी। त्रिलोकी में मुझे पूज्य बनायेगी। वह संसार में सौतेली माँ के कलंक को हमेशा के लिए धो देगी।

स्त्री रूप में किसी भी माता का प्रेम-दुलार न मिलने पर बच्चों का हृदय प्रेम की संवेदना से रहित हो जाता है, प्रत्येक मनुष्य के लिए उनके हृदय में द्वेष भर जाता है, वे सबको अपना शत्रु बना लेते हैं।

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्म स्मरणाय मे।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगेन जायते।।

मैंने तुम्हें इसलिए दिखला दिया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारों का स्मरण हो जाय। यदि मैं ऐसा नहीं करता तो केवल मनुष्य शरीर से मेरे अवतार की पहचान नहीं हो पाती।

देवकी ने बड़ी प्रसन्नता से पूछा–

हे प्रभु ! आपको हमारे यहाँ जन्म तो लेना ही था किन्तु आपने अपने चारों हाथों में शंख, गदा, चक्र और कमल लिए अपना सुन्दर मनमोहक दर्शन दिया क्या इसका भी कोई कारण है ?

भगवान ने उपरोक्त श्लोक के माध्यम से उत्तर दिया–हे माता ! बिना वैराग्य के किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं होता है। मेरे अनुग्रह से तुम्हारा दोनों का इसी जन्म में मोक्ष होना है। किन्तु इससे पूर्व जीवन में संसार की किसी भी वस्तु में तुम्हें राग-द्वेष नहीं रखना चाहिए। तुम्हें संसार सुख से सदा दूर रखने के लिए यह बहुत जरूरी है कि तुमको संसार दुःख का अथाह सागर नजर आये तभी तुम्हें संसार की हर वस्तु और प्राणियों से वैराग्य हो सकेगा। मेरे मनमोहक दर्शन कर लेने के बाद स्वतः ही वैराग्य होने लगता है। मेरे जैसे निर्मलता तुम्हारे चित्त में अवस्थित करने के लिए मेरे ब्रह्ममय साकार स्वरूप का सदा चिन्तन करते रहना अति आवश्यक है। मेरा ही स्वरूप बन जाने के बाद मेरा भक्त भव बन्धन से पार हो जाता है। इसीलिए मैंने तुम दोनों को अपने साकार स्वरूप का दर्शन दिया है।

हे माता ! तुम मेरे दर्शन पाकर अब विगत राग हो चुकी हो अब तुम्हें मेरा मोह नहीं व्यापेगा। जब में नन्द बाबा के यहाँ जाऊँगा तो तुम्हें अधिक कष्ट महसूस नहीं होगा।

मेरे पूर्व के दोनों जन्मों में तुमने मेरी सेवा करके बहुत पुण्य कमा लिया है। वर्तमान जन्म मोक्ष हेतु पुण्य कमाने एवं पिछले समस्त कुसंस्कारों का कष्टमय फल भोगने के लिए तुम्हें मिला है। इस प्रकार मोक्ष की पात्रता प्राप्त होगी।

हे माता ! महान कष्टों के भुगतान तुम्हारे अन्दर संसार के प्रति प्रबल वैराग्य उत्पन्न करेंगे तब तुम्हारे मन में मोक्ष की कामना बड़ी प्रबलता से स्वतः ही उठेगी। हे मेरी माता यदि मैं तुम्हें अपना मनुहारी दर्शन देकर अपने पूर्व के जन्मों की याद न दिलाऊँ तो तुम मुझे अन्य सांसारी लोगों की तरह साधारण मानव ही समझती रहोगी। तुम्हारे पुत्र कृष्ण के अन्दर मैं स्वयं पूर्ण ब्रह्म अपनी समस्त कलाओं के साथ समाया हुआ हूँ यही सब बताने के लिए मैंने तुम्हें अपने दिव्य दर्शन दिये हैं।

हे माता ! संसार से पूर्ण विरक्ति पा जाने के बाद बुद्धि में हर समय ईश्वर का (मेरा) चिन्तन बनाना चाहिए, यह सतत् चिन्तन् ही जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त करता है। तुम पुत्रभाव तथा ब्रह्मभाव दोनों ही भावनाओं से मेरा निरन्तर चिन्तन् करना। पुत्र-भावना करने से तुम्हारे अन्दर वात्सल्य प्रेम प्रकट होगा। इसी प्रेम के अन्तर्गत तुम मेरा ब्रह्म भावना से निरन्तर चिन्तन करना। बुद्धि

तो मन की अनुगामी होती है। मन में जैसी भावना होती है। बुद्धि उसी भावना का चिन्तन करने लगती है। हे माता ! इसी प्रकार मेरे निरन्तर चिन्तन से तुम्हें परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति होगी।

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद् गतिं पराम्।।

तुम दोनों मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर ब्रह्म भाव रखना इस प्रकार वात्सल्य स्नेह और ब्रह्म चिन्तन के द्वारा तुम्हें मेरे परम पद की प्राप्ति होगी।

फिर आगे भगवान ने कहा–

हे माता ! अब मेरा जाने का समय हो गया है। सभी द्वारपाल गहरी नींद में सोये पड़े हैं। ये सभी जगें इससे पूर्व ही मैं नन्द बाबा के यहाँ पहुँचना चाहता हूँ। यह कहते हुए भगवान शान्त हो गये उन्होंने पुनः अपना शिशु रूप धारण कर लिया।

इत्युक्त्वाऽऽसिद्धिरिस्तूष्णीं भगवानात्म मायया।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः।।

इतना कहकर भगवान चुप हो गये। उन्होंने योग माया से पिता-माता के देखते ही देखते तुरन्त एक साधारण शिशु का रूप धारण कर लिया।

(क्रमशः)

अपना चित्त शुद्ध हो तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं; सिंह और साँप भी अपना हिंसाभाव भूल जाते हैं, विष अमृत हो जाता है, आघात हित होता है, दुःख सर्वसुखस्वरूप फल देने वाला बनता है, आग की लपट ठंडी-ठंडी हवा हो जाती है। जिसका चित्त शुद्ध है, उसको सब जीव अपने जीवन के समान प्यार करते हैं। कारण, सबके अन्तर में एक ही भाव है।

भजन

डा० कृष्ण वीरसिंह तोमर

गुरुदेव नाम रटते-रटते, इस जग में सदा मैं घूमा करूँ।
चरणामृत पीकर के उनका, उन्हीं के ध्यान में झूमा करूँ।।
अति सुन्दर रूप योगेश तेरा, रमा, रोम-ही-रोम में रूमा करूँ।
गुरु के हृदय में बिठाके तुम्हें, पद पंकज नितदिन चूमा करूँ।।१।।

जीवन हम गुरू भाईयन कौ, श्रीदेवीराम जी कौ प्राणन प्यारौ।
गाँव अलूपुर आकर के, माँ चरिती घर, प्रभु कियो उजारौ।।
श्रीरामलाल जी सौ गुरू पाकर, योग 'कृष्ण' जी सौ याने धारौ।
धाम सवाँई में आकर, बनो गुरूवर, त्रिभुवन रखवारौ।।२।।

कूप में गंगा बहाकर के, दर्शन प्रभु कई घाटकर आये।
ऋषिकेष अरु हरिद्वार, राजघाट, कन्नौज नहाये।।
कानपुर, सोरों, फर्रुखाबाद, कणविास पर प्रभुजी पाये।
हे 'कृष्ण' तेरे दादा गुरुवर, सिद्धगुफा तजि कहीं न धाये।।३।।

गुरुदेव सो देव नहीं जग में, गुरुदेव त्रिदेव कहाते हैं।
नहालो-नहालो मेरे बच्चो, कह योग की गंग बहाते हैं।।
निराश्रय के प्रभु आश्रय बन, भवसागर पार कराते हैं।
श्री राम 'कृष्ण' श्री चाकरबन, गुरुदेव के आश्रम जाते हैं।।४।।

बिन गुरुदेव के नारद को, सुरसभा मध्य अपमान मिला।
चौरासी भोगनी पड़ी उनको, गुरू देव से उनने की थी गिला।।
फिर गुरुदेव की कृपा हुई, चौरासी कटी, सम्मान मिला।
'कृष्ण' गये विष्णु ढिग नारद, मानो उनका हृदय खिला।।५।।

अजपा–जप एवं षट्चक्रों के देवता

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

स्वस्थ पुरुष को चौबीस घंटे में २१,६०० श्वास-प्रश्वास होते हैं। इन श्वास-प्रश्वासों में 'हंस:' 'सोऽहं' इस मन्त्र का निरन्तर जप स्वाभाविक रूप से अनायास होता रहता है। इसी को अजपा-जप कहते हैं।

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसोऽति परमं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।

मनुष्य के शरीर में षट्चक्र हैं। उनमें सब देवताओं का निवास है। यदि प्रातःकाल सूर्योदय के समय यह अजपा-जप उन-उन देवताओं का संकल्पपूर्वक समर्पण कर दिया जाता है तो एक बड़ा यज्ञानुष्ठान सम्पन्न हो जाता है।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा–ये षट्चक्र हैं।

(१) मूलाधार चक्र– यह चक्र उपस्थ और पायु के मध्य है। यह चार दल का पद्म है। इसके चार दलों में **वं शं षं सं** ये चार वर्ण हैं। इसका कुंकुम वर्ण है। सिद्धि–बुद्धि सहित गणपति देवता यहाँ विराजमान हैं। इनको छः सौ मन्त्र समर्पित किये जाते हैं।

(२) स्वाधिष्ठान चक्र– यह उपस्थ के ऊपरी भाग में है। यह षट्दल पद्म है और **बं भं मं यं रं लं** ये छः अक्षर इनमें हैं। इसका वर्ण सिन्दूर के समान है। अपनी शक्ति भगवती सरस्वती के साथ भगवान ब्रह्मा यहाँ विराजमान हैं। इनको छः हजार जप समर्पित किया जाता है।

(३) मणिपूरक चक्र– यह नाभि में है। यह दस दलों का पद्म है। इसमें **डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं** ये दस अक्षर हैं। इसका वर्ण नील है। लक्ष्मी सहित भगवान् विष्णु इसमें विराजमान हैं। इनको छः हजार जप समर्पित किया जाता है।

(४) अनाहत चक्र– यह चक्र हृदय में है। यह द्वादश दल पद्म है। इसमें **कं** से **ठं** तक वर्ण हैं। इसका हेम वर्ण है। पार्वती सहित परमशिव इसमें विराजमान रहते हैं। इसमें छः हजार जप समर्पित किया जाता है।

(५) विशुद्धि चक्र– यह कण्ठ में है। यह षोडश दल का पद्म है। इसमें **अ** से लेकर **अः** तक सोलह स्वर पद्म के पत्रों में हैं। इसका शुद्ध स्फटिक के समान वर्णन है और इसमें प्राणशक्ति सहित जीवात्मा विराजमान है। इसको एक हजार जप समर्पित होता है।

(६) आज्ञा-चक्र– यह भ्रूमध्य में स्थित है। यह द्विदल पद्म है। इसमें **हं क्षं**–ये दोनों वर्ण

पद्मपत्रों में हैं। ज्ञानशक्ति सहित गुरुदेवता इसमें विराजमान हैं। इन्हें एक हजार जप समर्पित किया जाता है। इसका विद्युत वर्ण है।

इन छः चक्रों के बाद मेरुदण्ड के ऊपरी सिरे पर सहस्रदल पद्मयुक्त सहस्रार चक्र है। पूरी पञ्चाशत मात्रिका के वर्णों को बीस बार उच्चारण करने से एक सहस्र मातृकायें हो जाती हैं और इसी के हजार दलों में ये मातृकायें हैं। नानावर्ण युक्त वर्णातीत पूर्ण चन्द्र मण्डल युक्त इस चक्र में चित् शक्ति सहित परमात्मा विराजमान हैं। इनको एक सहस्रजप समर्पित किया जाता है।

इस प्रकार संकल्पपूर्वक जप समर्पण करके 'हंस:' में 'सोऽहं' की भावना की जाती है। और फिर दूसरे दिन २१,६०० जप अनायास होता है। उसे भी इसी प्रकार समर्पित किया जाता है।

मन्त्रयोग के द्वारा कुण्डलिनी का जागरण करके इन षट्चक्रों का भेदन किया जाता है। इससे तत्त सिद्धियों की प्राप्ति होती है। मंत्र सिद्ध होने पर कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा मार्ग से शिरःस्थ ब्रह्मरन्ध्र में जाती है। वहाँ शिवशक्ति का समायोग होने से वहाँ स्थित चन्द्र मण्डल से अमृत धारायें निकलती हैं। इससे योगी का शरीर उद्दीप्त होता है। इसके लिये सद्गुरु के द्वारा मंत्र प्राप्त करके उसका विधिवत् पुरश्चरण करने से जब मंत्र चैतन्य हो जाय, तो यह षट्चक्र भेदन की क्रिया मन्त्रयोग के द्वारा सुगम हो जाती है।

संसार की जितनी भी सम्पत्तियाँ हैं यदि वे किसी एक मनुष्य को मिल जायें तो भी वह अपूर्ण ही रहता है और उसकी कई प्रकार की इच्छायें बनी ही रहती हैं। जीव ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म में समस्त ज्ञान, समस्त शक्ति, समस्त विद्या, अनन्त शासन सत्ता आदि सब शक्तियाँ हैं। जीव भी उसी का अंश होने से उसको जब ये शक्तियाँ प्राप्त हों तब वह भी पूर्ण हो जाता है। शास्त्रों में ब्रह्म सम्मिलन योग्य शरीर बनाने का विधान है–**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।** अर्थात् यज्ञ और महायज्ञों के द्वारा इस शरीर को ब्रह्म सम्मिलन योग्य बनाया जाता है। इसलिये मनुष्य शरीर में स्थित जो देवता हैं। उनकी उपासना की जाय तो शीघ्र ही शरीर शुद्ध, पवित्र और ब्रह्म सम्मिलन योग्य हो जाता है। इसीलिये कहा गया है कि यह शरीर देवालय है और इसमें स्थित जीवरूप भगवान् के साथ अनेक देवता विराजमान रहते हैं।

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः।

करुणामूर्ति, करुणार्णव हमारे सद्गुरुदेव अपने अमृतमय प्रवचनों के अन्त में हम सबको बारम्बार यही चेताया करते थे कि इस योग मार्ग पर श्रद्धापूर्वक, अभ्यासपरायण हो नियमानुबद्ध होकर प्रवृत्त होकर देखो तो जीवन तुम्हारा कृतार्थ हो जायेगा और तुम जो दीनहीनवत् आचरण करते हो इसके करने से निहाल हो जाओगे। श्रीसद्गुरुदेव के वचनों में अटूट आस्था रखने वाले न जाने हमारे कितने ही गुरुभाई कृतकृत्य, धन्य एवं निहाल हो चुके हैं और भविष्य में भी सन्मार्ग पर आरुढ़ सद्गुरुदेव दत्त मन्त्र के अहर्निश जाप से अनेकों शिष्यों का कल्याण सुनिश्चित है, इसमें किसी प्रकार का संशय है ही नहीं। इति शम्।

***

गुरु माहात्म्य

ब्रह्म की संकल्पना जीव की अत्यन्त अद्‌भुत और अलौकिक प्रज्ञा परिणित है।

पिण्ड में ब्रह्माण्ड अथवा बीज में वृक्ष अथवा रश्मि रेखा में उद्‌भासित सम्पूर्ण भास्कर-ये सब ऋज सूक्तियाँ हैं। इनका ऋजत्व गहन है। अनुभूतियों के धरातल पर उनका आनन्द अमोघ है किन्तु जिस स्थल पर मेरी चेतना प्रश्नवाचक चिन्ह बनाए बैठी है वह है कि जीव और ब्रह्म के मध्य में जो आवान्तर है शून्य सा अज्ञात सा- ऐसी जिसकी निविड़ता में जीव ब्रह्म की संज्ञा से अज्ञात रहता है। वह अज्ञानावस्था क्यों है ? और यदि यह विसुप्ति है ही, तो उसका निदान क्या है ? प्रश्न सीधा सा यह है कि वह कौन सी कृपा है जिसकी प्राप्ति अथवा पुष्टि पर जीव ब्रह्म ज्ञान के प्रति संवेदनशील, संज्ञान अथवा जागरूक हो जाता है-

सूफी जिसे शरीयत कहते हैं, भक्त जिसे आत्म-पर्यवेक्षण की संज्ञा देते हैं और योगी जिसे आत्म शुद्धि कहते हैं, ज्ञान के मार्ग में उसका परम महत्व है। इस मार्ग की पहली शर्त है आत्म शुद्धि।

शुद्धि काया की सरल है, मन की दुस्तर। कितने ही जन्म मन की शुद्धि में ही व्यतीत हो जाते हैं फिर चित्त की शुद्धि की आवश्यकता पड़ती है और तब निर्लिप्त चेतना अथवा निर्विकार मन गुरू प्रसाद पाने का अधिकारी होता है।

"गुरू" शब्द का प्रयोग मैंने किंचित शीघ्र ही कर दिया क्योंकि साधना के मार्ग में गुरू मुख्य केन्द्र है। जिन शारीरिक और मानसिक शुद्धि की बात कही गई है वह भी गुरू कृपा से ही सम्भव है-

पर इस गुरू कृपा का अर्थ यह नहीं है कि साधक का अपना कृतित्व कुछ भी न हो।

यदि साधक अकर्मण्य अथवा अस्थिर, चंचल और अहंकारी हो तो गुरू की प्रशंसा अथवा गुरू के प्रति अपनी श्रद्धा का विज्ञापन वह चाहे जितना करता डोले, साधना के क्षेत्र में उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। गुरू एक ऐसा प्रकाश स्तम्भ है जिसके आलोक में हमारा पथ प्रशस्त होता है किन्तु चलना हमें है, हमीं को है।

यहाँ तीन तत्व साधना के क्षेत्र में इंगित किए गए हैं :

१. साधना के लिए साधक की आत्म शुद्धि

२. आत्म चेती गुरू

३. गुरु द्वारा निर्देशित मार्ग का अवलम्बन

इन तीनों तत्वों के बारे में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि ये तीन तत्व वास्तव में दो ही तत्व हैं-

१. गुरु माहात्म्य

२. गुरु अनुशीलन

महात्मन् गुरू के प्राप्त होने पर यदि तनिक भी कृपा रज प्राप्त हो जाए तो शरीर और मन की शुद्धि तो क्या, सम्पूर्ण जीवात्मा की शुद्धि भी सम्भव है। और गुरू के प्रसाद में प्राप्त मार्ग का अनुशीलन कर लिया जाए तो साधना की कोई भी उपलब्धि संदिग्ध नहीं है।

गुरू ज्ञाता है निगूढ़ और गहन रहस्य के पट उस की दृष्टि पथ में खुल जाते हैं। आत्म बोध और आत्म ज्ञान दोनों ही गुरू को प्राप्त हैं। अतः जो मार्ग साधना के पथ पर अत्यन्त जटिल और गूढ़ हैं, भक्ति मार्ग में जो अर्चनायें अत्यन्त सूक्ष्म और दुस्तर है, उन्हीं साधनाओं और अर्चनाओं का मार्ग गुरू कृपा से अत्यन्त सरल और सुबोध हो जाता है।

यह गुरू की प्रशस्ति नहीं है वरन् यह सनातन सत्य है गुरू ब्रह्म ज्ञानी है। जो कुछ अक्षर है, अज्ञेय है अनादि और अनन्त है गुरू को वह प्राप्त है। सद्गुरु के समक्ष वह अत्यन्त सुगम है, क्योंकि सतगुरु उस ब्रह्म में समाहित है।

अतः ब्रह्म और गुरू में किंचित मात्र भी भेद नहीं होता इसीलिए मनीषियों ने भी गुरू को ब्रह्म के समान ही समादरित किया है-

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु गुरुर्देवोः महेश्वरः
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।

***

जिसने भगवान् के साक्षात् दर्शन नहीं किये, संतों में उसकी मान्यता नहीं। संत और भक्त वही है जिसे भगवान् का सगुण-साक्षात्कार हुआ हो। भोजन के बिना तृप्ति कहाँ ?

"सा विद्या या विमुक्तये"

पं० महेश बोहरे, एडवोकेट

विद्या अध्ययन के द्वारा ही विमुक्त भाव की स्थिति प्राप्त होती है, अर्थात विद्या, बुद्धि, ज्ञान और विवेक का अभाव ही बंधन है। बंधन का आशय रस्सी के बंधन तक ही सीमित नहीं है, बंधन के शाब्दिक अर्थ के बजाय उसके-तात्विक अर्थ को समझना आवश्यक है। पराधीनता एवं आसक्ति भी बंधन ही है। यदि बंधन के शाब्दिक अर्थ तक ही सीमित रह जाते हैं तो भी स्थिति सहज ही स्पष्ट हो जाती है। रस्सी के बंधन का उपयोग पशुओं के लिये किया जाता है, क्योंकि उनमें विद्या, बुद्धि, ज्ञान और विवेक का अभाव होता है। मनुष्य भी जब विद्या, बुद्धि और ज्ञान से हीन अज्ञानी एवं विवेकशून्य हो जाता है तो उसको भी पशुओं की भांति बंधन के द्वारा बंदी बना लिया जाता है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** इस सूत्र के अनुसार "सा" अर्थात विद्या ही मुक्ति दायिनी है।

ज्ञान के अभाव में ही मनुष्य, बुद्धि हीन, विवेक शून्य कुकृत्य करके बंदी के रूप में बंधन की गति को प्राप्त करता है, ऐसे बंधन से भी उसकी मुक्ति, किसी ज्ञानी, विवेकवान व्यक्ति के द्वारा, उसका बचाव अर्थात् प्रतिरक्षा करने पर ही होती है।

जीवन का कल्याण विद्या अध्ययन के द्वारा ही होता है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** यह एक ऐसा सूत्र है जो हमें मोक्ष मार्ग की तरफ ले जाता है। मोक्ष की गति भी ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होती है। ज्ञान में सन्मार्ग की प्राप्ति तथा अज्ञान में भटकाव की स्थिति निहित है। ज्ञान प्राप्ति के बाद ही आत्म कल्याण संभव है। उपरोक्त सूत्र में "सा" का उपयोग स्त्रीलिंग में आत्मा के लिये भी किया गया है, जिसकी मुक्ति विद्या अर्थात ज्ञान के द्वारा ही होती है, ज्ञान के बिना आत्म कल्याण नहीं होता है।

अर्जुन जब विवेक शून्य एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ तब भगवान कृष्ण ने गीता के ज्ञान के द्वारा उसका विवेक जाग्रत करने के लिये **"तस्मात योगी भवार्जुन"** का सूत्र देकर उसे माया-मोह के बंधन से मुक्त किया। **"सा विद्या या विमुक्तये"** के इस पवित्र सूत्र में संकीर्णता नहीं अपितु अत्यन्त व्यापकता है। आत्मा का कल्याण विवेकवान के द्वारा ही होता है। अर्थात् स्वयं विवेक शून्य होने की दशा में अन्य विवेकवान व्यक्ति से ज्ञान प्राप्त करने की ओर संकेत है, जैसा कि भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन को उपदेशों के द्वारा सन्मार्ग के लिये प्रेरित किया। इसीलिये आज भी समाज में लोक कल्याण के लिये कथा, भागवत, प्रवचन आदि के द्वारा ज्ञान और विवेक की जाग्रति की जाती है, क्योंकि सांसारिक माया-मोह के बंधन से मुक्ति भी ज्ञान और विवेक प्राप्ति के बाद ही होती है, तथा ज्ञान और विवेक की प्राप्ति किसी ज्ञानी और विवेकवान से ही की जा सकती है। इस प्रकार **"सा विद्या या विमुक्तये"** इस सूत्र में "सा" का तात्विक अर्थ सांसारिक माया-मोह की ओर भी संकेत करता है जिससे मुक्ति, ज्ञान और विवेक जाग्रत होने पर ही होती है।

ज्ञान और विवेक की प्राप्ति के बाद ही अध्यात्म जाग्रत होता है। तथा अध्यात्म अर्थात आत्म

ज्ञान और विवेक की प्राप्ति के बाद ही अध्यात्म जाग्रत होता है। तथा अध्यात्म अर्थात आत्म ज्ञान होने पर ही आत्म मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से **"सा विद्या या विमुक्तये"** के सूत्र की व्यापकता में आत्म मुक्ति, पारिवारिक व सामाजिक मुक्ति, लौकिक एवं पारलौकिक मुक्ति तक निहित है, इसलिये यदि किसी के जीवन में मोक्ष मार्ग सम्बन्धी कोई भटकाव या संशय है तो वह सुनिश्चित ही **"सा विद्या या विमुक्तये"** के सूत्र द्वारा समाप्त हो जावेगा।

ज्ञान ही मोक्ष मार्ग है। ज्ञान से मुक्ति तथा अज्ञान से विनाश होता है जैसा कि गीता में कहा है, **"अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति"** अर्थात् जो व्यक्ति अज्ञानी है, श्रद्धारहित तथा संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है, उसका मोक्ष नहीं होता। इस प्रकार ज्ञान मोक्ष का कारक है एवं अज्ञान विनाश कारक। ज्ञान से मोक्ष एवं मोक्ष से सद्गति प्राप्त होती है, जबकि अज्ञान से विनाश एवं विनाश से दुर्गति होती है, इसलिये **"सा विद्या या विमुक्तये"** सूत्र के अनुसार जीवन में विद्या ही मुक्ति दायिनी है, सही अर्थों में विद्या वही है जो मोक्षदा है। आत्म मुक्ति, आत्म मोक्ष, आत्म कल्याण विद्या के द्वारा ही होती है तथा लौकिक एवं अलौकिक माया-मोह के बन्धन से विमुक्ति का साधन भी विद्या की साधना से ही सार्थक होता है, सभी प्रकार की विमुक्ति का सार इहलोक और पर-लोक दोनों में विद्या ही है, **"सा विद्या या विमुक्तये"**

***

> *धर्म ग्रन्थों के पढ़ने में हमारी अपनी उत्सुकता बाधा खड़ी करती है; क्योंकि जिस बात को पढ़कर हमें बिना कोई विशेष परिश्रम किये आगे बढ़ना चाहिये था, उसी पर हम वाद-विवाद करने लगते हैं और उसकी परीक्षा करने में फँस जाते है।*

महाप्रयाण के पश्चात बारह वर्ष

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

जैसा कि आज हम देख रहे हैं। सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की स्थूल शरीराकृति के दृष्यमान जगत से ओझल हो जाने के पश्चात हजारों कठिनाइयाँ आने पर भी आज उन्हीं परम प्रतापी योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी की परम कृपा से सब कुछ सामान्य सा ही है। परन्तु सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी की स्थूल शरीराकृति जगत में विराजमान रहते हम इस बात की कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि अपने सर्वेश्वर परमपिता, आस्थापुरुष सद्गुरुदेव जी को स्थूल शरीराकृति के न रहने पर हम कैसे जीवित एवं प्रसन्न रह सकेंगे। परन्तु हमने २५ जून सन् १९९० को अकस्मात् घटी घटना का असह्य दुःख सहन किया बलिक दिल पर पत्थर रखकर सब कुछ देखा, सुना और समझने का प्रयास किया। प्रश्न बहुत थे पर उत्तर देने वाला कोई नहीं। न केवल मेरे साथ बल्कि श्री गुरुदेव जी के अन्यान्य लाड़ले शिष्यों के साथ भी ऐसा हुआ जब श्री सद्गुरुदेव जी के महापरिनिर्वाण का अत्यन्त दुःखद समाचार प्राप्त हुआ तो श्री सद्गुरुदेव जी से जुड़े लोग शोक सागर में डूब गये। मानो आस्था की प्रतिमा खण्डित हो गई, विश्वास का उपवन उजड़ गया, दृढ़ता का बांध टूट गया, आँखों में,आँसुओं का सागर हिलोरें लेने लगा, सब कुछ निरर्थक प्रतीत होने लगा था। गुरु निष्ठ लोगों की आस्था बिखर कर यत्र तत्र भटकने लगी। सन् १९९० से लेकर सन् १९९५ तक अधिकांशतः विपरीत-परिस्थितियाँ ही अधिक प्रोत्साहन पाती रहीं। श्री सद्गुरुदेव जी के सिद्धपीठ योगाश्रमों में जहाँ उनके अनुयायियों की अपार भीड़ रहती थी वहीं श्री सद्गुरुदेव जी के महापरिनिर्वाण के पश्चात भीड़ सीमित हो गई स्वयं मैंने देखा कि श्री गंगा दशहरे के सन् १९९१ के महापर्व पर श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में मात्र ५०-६० व्यक्ति ही उपस्थित थे। पर फिर भी आचार्य श्री पूरण चन्द जी अपने भगीरथ प्रयास में जुटे रहे जिसका परिणाम यह निकला कि आश्रम आज सद्गुरु कृपा से उन्नति एवं प्रगति पर है।

परन्तु मेरे सामर्थ्यवान सद्गुरुदेव जी का क्या कहना, सन् १९९५ से श्री सद्गुरुदेव जी की शक्ति पुनः चमकने लगी उनके द्वारा किये गये आश्चर्यमय अलौकिक कार्य लोगों के सामने आने लगे। श्री गुरुदेव जी के अकस्मात हुये महापरिनिर्वाण के पश्चात से ही एक प्रश्न प्रायः चर्चा का विषय बन जाता था कि अब कौन शक्तिपात दीक्षायें दे सकेगा तो जो भक्त मात्र श्री गुरुदेव जी को ही अपने गुरुदेव मान चुके थे पर किसी कारणवश दीक्षा नहीं ले सके थे। अब वे लोग क्या करें श्री गीता जी में भगवान ने अपने पदार्पण के तीन कारण बताये हैं। उनमें से एक "परित्राणाय साधूनां" अर्थात् सात्विक पुरुषों की श्रद्धा की रक्षा के लिये अपने रूप की रचना करते हैं। ठीक इसी परिपाटी का पालन करते हुये अनेक सात्विक व्यक्तियों की श्रद्धा की रक्षा करने के लिये श्री गुरुदेव जी ने पुनः शरीर निर्माण करके सुपात्र व्यक्तियों को दीक्षायें प्रदान की इस प्रकार की सत्य घटनाओं के परिचायक लेख सिद्धयोग पत्रिका में भी प्रकाशित होते रहे हैं। श्री सिद्धगुफा एवं अमृतकुण्ड की पवित्र रज का सेवन करके लोगों का लाभान्वित होना व श्री सिद्ध गुफा आश्रम में श्री गुरुदेव जी के दिव्य तेज का आभास लोगों को होना आदि अनेकों अवसर ऐसे भी आये जब श्री गुरुदेव जी ने

लोगों को ध्यान एवं स्वप्न के माध्यम से आदेश निर्देश दिये और अनवरत दे रहे हैं। जो कहीं भी श्री गुरुदेव जी का पवित्र हृदय से स्मरण करता है तो श्री गुरुदेव जी की मदद उसको प्राप्त होती है। इसके लिये यह कतई आवश्यक नहीं कि वह श्री गुरुदेव जी का दीक्षित शिष्य ही हो। इसके अनेक प्रमाण हमारे पास स्मृति कोष में सुरक्षित हैं। हमारे गुरुभाई समाज में यह बात सर्वविदित है कि श्री गुरुदेव जी के पवित्र संकल्प के होते ही कैसा भी कार्य होता था वह अवश्य पूरा हो जाता था।

श्री गुरुदेव जी के महाप्रयाण के पश्चात मेरे मन में अत्यधिक दुःख व सन्ताप बना रहा। एक दिन अकस्मात ही श्री गुरुदेव जी की आज्ञा ध्यान के द्वारा अपनी योग्यता बढ़ाने की हुई और रोने पर तो बिल्कुल ही पाबन्दी लगा दी गई। इस गुरु आज्ञा की प्राप्ति के पश्चात ध्यान, जप एवं श्री गुरुदेव जी द्वारा प्रदत्त आज्ञा के फलस्वरूप साप्ताहिक सत्संग को खूब धूमधाम से चलाते रहे। श्री गुरुदेव जी की कृपा दृष्टि अपने शिष्य समाज पर बराबर बनी रही। ठीक इसी समय सन् १९९० के पश्चात अनेक योग केन्द्र आश्रमों का निर्माण हुआ। श्री चन्द्रमोहन प्रभु योग प्रचार आश्रम सहारनपुर, सिद्धयोग आश्रम बुलंदशहर, योग आश्रम मण्डी हि०प्र०, योग आश्रम निधौली कलां, श्री गुरुचन्द्रमोहन जी महाराज योग मन्दिर अलूपुर धाम, दो वर्ष पूर्व आदरणीया उमा बहन जी द्वारा स्थापित योग मन्दिर कुरुक्षेत्र हरियाणा, और साथ ही श्री गुरुदेव जी की स्मृति में होने वाले योग सम्मेलन एवं समारोह, जहाँ पर पूर्व में उनके सम्पर्क में आये हुये लोग एकत्र होकर उनका चिन्तन करते हैं। इसके बहुत अच्छे उदाहरण साबित हुये झांसी सहारनपुर मण्डल, गंगापुर सिटी, माघमेला इलाहाबाद, अमृतसर, कानपुर। कानपुर का वर्णन आते ही वहाँ के श्रद्धालु भाईयों का स्मरण हो आता है। निश्चित ही वह बधाई के पात्र हैं। जो अपने गुरुदेव की कीर्ति फैलाने में लगे हैं। इन्होंने कुछ ही समय में इस उत्तम प्रयास में अच्छी प्रगति की है।

उपरोक्त सभी साधन श्री गुरुदेव जी के प्रति निष्ठा को दृढ़ करने में परम सहायक सिद्ध हुये हैं। और श्री गुरुदेव जी के शक्ति के परिचायक हैं। विस्तार भय से मैंने कुछ ही साधनों की ओर संकेत मात्र किया है। इन शुभ प्रयासों एवं सामर्थ्यशाली श्री गुरुदेवजी की परम कृपा से आस्था का सुदृढ़ स्तम्भ पुनः स्थापित हो गया है। जिसके सहारे विश्वास की बेल पल्लवित होकर विस्तार पाने लगी है। आशाओं की किरण पुनः जगमगाने लगी है। यत्र तत्र छिटक गये श्री गुरुदेव जी के लाड़ले श्री गुरुदेव जी के सिद्धपीठों पर श्री गुरुदेव की चिन्मय सत्ता के आगे नतमस्तक दिखाई देने लगे हैं। श्री गुरुदेव जी का परब्रह्म स्वरूप पूर्व की भांति आज भी अपने प्रत्येक शिष्य से जुड़ा हुआ है। श्री सद्गुरुदेव जी अपने सभी शिष्यों एवं प्रशिष्यों के योग क्षेम को वहन करते हैं। अब कभी ऐसा लगता ही नहीं कि श्री गुरु देव जी की स्थूलाकृति बारह वर्ष से हमारे बीच नहीं है।

ऐसा कहा जाता है कि बारह वर्ष में समय का चक्र अवश्य बदलता है। अब देखना यह है कि श्री गुरुदेव जी की क्या-क्या लीलायें दृष्टिगोचर होती हैं। और उनका क्या प्रभाव साधकों पर पड़ता है। श्री गुरुदेव जी का अमृतमयी दृष्टिपात साधकों के जन्म जन्मान्तरों को बदलकर रख देता है। रामरती, रामा बिजना, शलमा, माता द्रोपदी, ऋषि देवी, हरिहरानन्द, मुलखराजजी, माणिकचन्द, सरोज, संसार सिंह, श्याम बिहारी शुक्ल, टाट बाबा, मालादेवी, आदि-आदि हजारों नाम हैं जो उदाहरण के लिये प्रयोग किये जा सकते हैं। जो अपने जीवन में साधारण प्राणी थे पर श्री गुरुदेव की एक कृपा दृष्टि ने सामान्यता से ऊँचा उठा कर अति विशिष्ट स्थान त्रिलोकी में बना कर, संसार में पूज्यनीय स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया।

***

"रामानुराग"

पं० महेश बोहरे, एडवोकेट

आज देश में राम राज्य की बातें तो सबही करते हैं।
सिंहासन की मर्यादा का, खुले आम खण्डन करते हैं।।

सिंहासन की बागडोर भी, कुश-आसन आधीन रही है।
अवधपुरी में गुरु अनुशासित, राम राज्य की नींव यही है।।

तभी भरत जैसे भाई ने, सिंहासन परित्याग किया था।
संत वृत्ति अनुसरित रहे थे, राम-चरण अनुराग किया था।।

परम ब्रह्म अवतरित राम ने, लौकिक जीवन तो अपनाया।
किंतु स्वार्थ की चाह नहीं की, त्याग तपस्या भाव दिखाया।।

सिंहासन को त्याग राम ने, चौदह वर्ष वनवास किया था।
जनहित में संताप सहे थे, दानव दल का नाश किया था।।

तभी निरंकुश, अत्याचारी, दानव सत्ता मिट पाई थी।
सदाचार की राजनीति से, विजय राम को मिल पाई थी।।

राम राज्य स्थापित करने, पहले अनुचर राज्य बनाये।
गुह-निषाद, सुग्रीव, विभीषण, अनुचर राज्य-प्रमुख बैठाये।।

सदाचार स्थापित करके, वन से राम अवध आये थे।
राज-मुकुट और सिंहासन भी, तभी राम ने अपनाये थे।।

राजनीति की मर्यादा को, रघुनन्दन ने सतत निभाया।
धर्मनीति से अनुशासित कर, राम राज्य का सुख पहुँचाया।।

उन्हीं राम को स्वार्थपरायण-राजनीति से जोड़ रहे हैं।
वे विमूढ़ "माया" वश होकर, 'राम' से नाता तोड़ रहे हैं।।

आज प्रदूषित राजनीति में, सिंहासन का स्वार्थ निहित है।
मंदिर-मस्जिद का विवाद भी, सत्ता-ग्रसित-दुराव जनित है।।

शासक और प्रजा दोनों में, पिता-पुत्र सा भाव नहीं है।
शासक शोषक बने हुए हैं, पोषक का सद्भाव नहीं है।।

अवधपुरी में द्वेष रहा तो, वनवासी ही राम रहेंगे।
जन-जन में अनुराग रहा तो, घट-घट वासी राम रहेंगे।

उनकी मूरत की पूजा तो, जन-जन के मन में होती है।
तुलसी में, रसखान में, देखो, उनकी कविता में होती है।।

द्वेष जनित महलों में उनको, भरत-अनुज क्या ला पाये थे ?
चौदह बरस पादुका पूजन, भरत गले तब लग पाये थे।।

जन मानस के निर्मल मन में, प्यार का पावन महल बनाओ।
मन-मालिन्य मिटादो पहले, राम लला को तभी बिठाओ।।

राम लला की मर्यादायें, कभी न कोई मिटा सकेगा।
द्वेष जनित भावों को लेकर, कभी न मन में बिठा सकेगा।।

भारत मां की पावन प्रतिज्ञा, विश्व विदित सब से न्यारी है।
जन्म भूमि जननि से ज्यादा, जन-जन को लगती प्यारी है।।

भारत की भूमि अनुपम है, इसे ब्रह्म ने प्यार किया है।
इसकी रज में ब्रह्म तत्व हैं, यहाँ ब्रह्म अवतार हुआ है।।

इस धरती के रज कण से ही, शक्ति का संज्ञान मिला है।
यहीं प्रणव की ऊर्जा जागी, ध्यान-योग-विज्ञान मिला है।।

***

: पद :

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

गुरुजी ! मैं तुम्हारे आधीन।
जैसे जल पर आश्रित रहती सदा निचारी मीन।।
तुम ही मेरा भोजन पानी और बिस्तर कालीन।।
संग हमारो तब से जब से रचना रची नवीन।।
रहूँ नीर में फिर भी मेरा मन-बुद्धि-चित्त मलीन।।
माया-बगुली निशिदिन खावै; रहतु हृदय गमगीन।।
जग-मछुआरा मोय पकड़नै डाले जाल महीन।।
काम-क्रोध के गरम रेत पर पटके पकड़ जहीन।।
'अंकुश' के सब दोष बिसारौ नूतन और प्राचीन।।
दीन बन्धु तुम, दयासिन्धु तुम, तुम हो परम प्रवीन।।

***

नेत्र-ज्योति-प्रकाशिनी-नेति

परमपूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के आदरणीय गुरुभाई श्री गोपालानन्द जी ब्रह्मचारी द्वारा 'नेति' क्रिया पर गम्भीर शोध किए गए और उन्होंने इसके माध्यम से न केवल अनेकानेक योगियों को आजीवन स्वस्थ्य रहने के लिए प्रेरित किया अपितु सहस्त्रों रोगियों को कण्ठ, नासिका, कर्ण, नेत्र, दन्त और मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों से पूर्णत: रोग मुक्त किया। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ब्रह्मचारी जी ने चतुर्दिक आग्रह पर 'नेत्र-ज्योति-प्रकाशिनी-नेति' नामक पुस्तक की रचना की थी ताकि जनसामान्य 'नेति' के त्वरित प्रभावोत्पादक प्रयोग से लाभान्वित हो सकें। ऋषियों की प्राचीन योग-विद्या के विभिन्न साधनों द्वारा हर प्रकार के रोगों की निवृत्ति बिना औषधि के आज भी हो सकती है-नेति का व्यावहारिक ज्ञान इसका अकाट्य प्रमाण है। 'नेति' सम्बन्धी विशेष और प्रामाणिक जानकारी से अपने पाठकों को परिचित कराने के लिए 'सिद्धयोग' द्वारा ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी द्वारा रचित इस पुस्तक के आधार पर यह लेखमाला प्रारम्भ की जा रही है-विश्वास है जिज्ञासू पाठकगण नेति सम्बन्धी सम्पूर्ण सारगर्भित ज्ञान प्राप्त कर लाभान्वित हो सकेंगे। —सम्पादक

अपने अनुभवी जीवन से समस्त संसार में दिव्य शक्तियों का प्रकाश करने वाले ऋषियों की आत्माओ ! आपने कभी विचारा है कि हमारा देश भारतवर्ष क्यों अर्जुन, भीम और भीष्म पितामह जैसे शूर-वीर, धर्मात्मा तथा योगियों से परिपूर्ण था ? वे कौन से साधन थे जिनके आधार पर भीम को वृकोदर पुकारा जाता था ? वह हठयोग के ही साधन वृक-अग्नि को उत्पन्न करने वाले थे, जिनसे भीमसेन सब प्रकार के कच्चे आहारादिक सेवन कर सकता था। आज भी उन्हीं साधनों द्वारा नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित बाल युवा, वृद्ध दुर्बल अति दुर्बल रोगी भी बिना औषधि के आरोग्यता को प्राप्त करके सेरों कच्ची सब्जी और चने की कच्ची दाल खाकर शारीरिक उन्नति प्राप्त कर ,अपने क्रियात्मक (अमली) जीवन से ऋषियों के उद्देश्यों का पालन कर रहे हैं। इस प्रकार की शक्तिशाली विद्याओं का आरम्भ समय-समय पर योग ही से होता रहता है। उन्हीं योग-साधनों के आधार पर भीष्म पितामह जी बाणों से घायल होकर भी बाणों की शैय्या पर शयन करते हुए मृत्यु को ललकारते थे कि हे मृत्यु सूर्य उत्तरायण होने तक ६ मास के लिए तुझे हमारे पास नहीं आना होगा, और मृत्यु को रुकना पड़ा। अर्जुन इन्हीं योग के साधनों के बल से पृथ्वी से पाताल-धारा निकालने में समर्थ था। बालक भरत प्राणायाम और त्राटक आदि के प्रभाव से सिहों को मूर्छित कर देता था। इसी योग-विद्या के बल से गुरु गोविन्द सिंह, वीर बन्दा वैरागी और श्री छत्रपति शिवाजी आदि देश में धर्म, सुख और शान्ति का राज्य-स्थापन करने में समर्थ हुए थे। प्रिय भारतीय आत्माओं! ऐसे प्राणायाम और आत्म-विद्या के बल को प्राप्त करने के उपाय योगादि शास्त्रों से निकल कर क्या बिल्कुल लुप्त हो गये जो आज आप लोगों को योगिजनों की शरण में जाने से प्राप्त नहीं हो सकते ? इस छोटी-सी पुस्तक में भारतवर्ष के योगियों के गुणों का वर्णन कहाँ तक हो सकता है ? अत्यन्त दु:ख का विषय

NETI TRACT

YOGSADHAN ASHRAM

FIG. 1

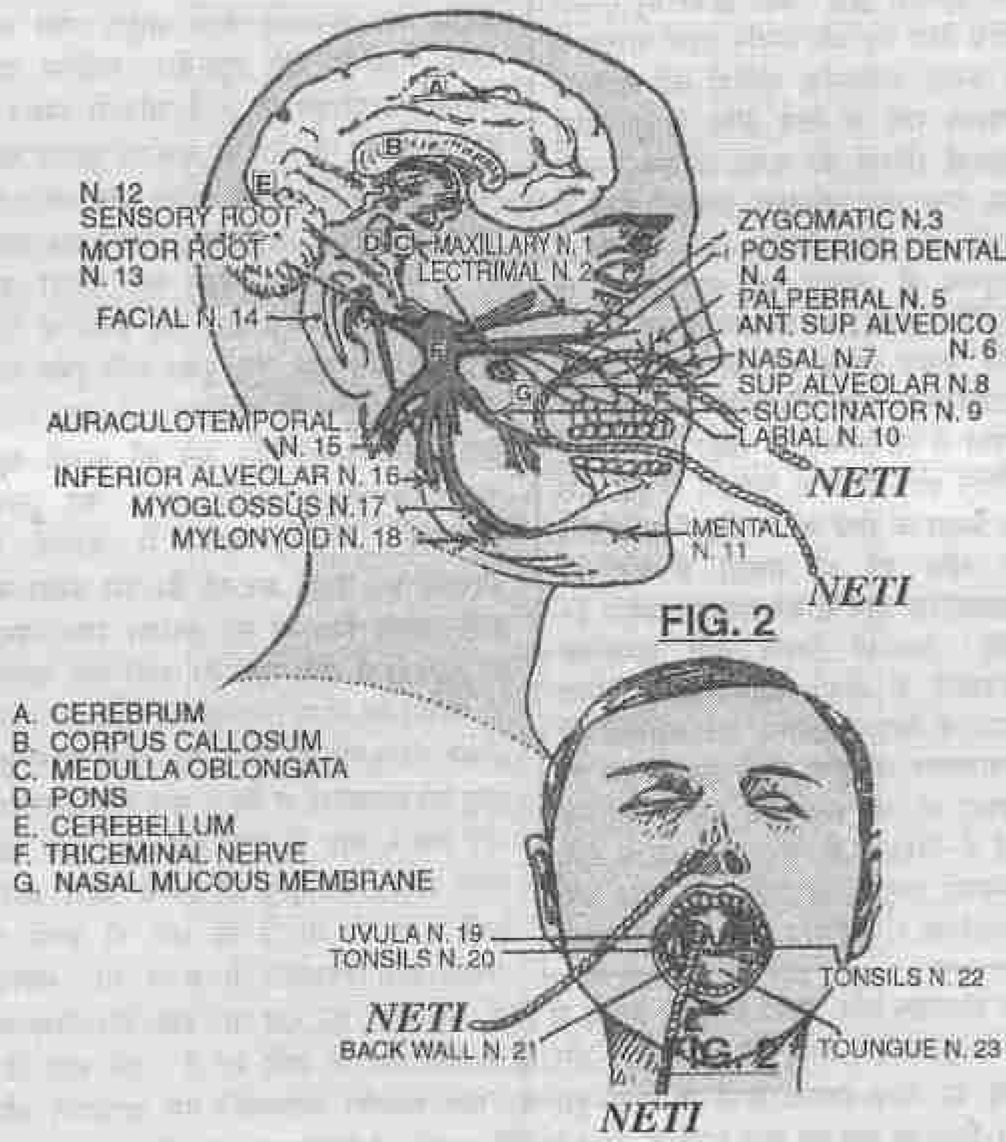

श्री गोपालानन्दजी द्वारा रचित पुस्तक नेत्र-ज्योति-प्रकाशिनी-नेति
के आवरण पर दिया गया चित्र

है कि ऐसे योग-साधनों के होते हुए भी इस देश के लोग अपने आपको भूल कर निमोनियाँ, हैजा, ताउन तपेदिक, गठिया, अर्धाङ्गादि भयंकर रोगों से ग्रसित होकर अपनी हानि करते रहे और अकाल मृत्यु के ग्रास बनते रहें ! आज कल भी हिमालय के पास बस्तियों में रहने वाले गृहस्थों और हिमालय पर्वत पर रहने वाले महात्माओं की ओर निहारो। वहाँ पर न तो कोई रोग है, न कोई डाक्टर ! ऐसे स्थानों पर साधु तो क्या पशु-पक्षी भी आपको प्राकृतिक रूप में रहने का उपदेश अपने अनुभवी जीवन द्वारा देते हैं, कि मन को निर्बल न बनाते हुए आप सर्दी और गर्मी में सुख पूर्वक एक समान हमारी ही तरह जीवन व्यतीत कर सकते हैं। जबकि डाक्टर और वैद्यों के होते हुए भी देश में रोग और रोगियों की संख्या नित्य प्रति बढ़ती जा रही है। तो प्रश्न होता है, कि क्या ऐसे समय में कोई और भी आरोग्यता के साधन हैं ? जिनके द्वारा हम लोग रोग-रहित होकर पूर्ण सुख और शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करते हुए आत्मिक और सामाजिक उन्नति प्राप्त कर सकें। तथा प्राचीन उच्च आत्माओं की तरह संसार को मुक्तजीवन का उपदेश अपने अनुभवी जीवन से दे सकें ? हाँ, ऋषियों की प्राचीन योग-विद्या के साधनों द्वारा हर प्रकार के रोगों की निवृति बिना औषधि के आज भी हो सकती है। ये साधन शारीरिक रोगों को दूर करने और निरोग रखने में संसार की समस्त औषधियों से अत्यन्त गुण कारक हैं इन अनेक साधनों में से एक साधन **नेति-क्रिया** भी है, जिसके कारण हम अपने प्राचीन भारतवासियों के चेहरों पर चश्में आदि कहीं नहीं देखते थे और अब भी उसी नेति-क्रिया की सहायता से बहुत से भाइयों के चश्मे उतर चुके हैं।

हम यह साहस के साथ कह सकते हैं कि नेति को नित्य करने से कण्ठ, नासिका, कर्ण, नेत्र, दन्त और मस्तक में कोई भी रोग, जब तक यह शरीर है, कदापि नहीं आ सकता। नजले से उत्पन्न हुई कण्ठमाला (हंजीरे) भी या और जितने भी रोग हो सकते हैं, उन सबकी निवृत्ति इस नेति के अभ्यास से हो जाती है और इस नेति के अतिरिक्त योग के अन्य साधनों द्वारा भी अनेक प्रकार के लाभ योग-साधन आश्रम में जाकर उठाए जा सकते हैं।

मेरा निजी अनुभव

कार्तिक मास का शुक्लपक्ष है। शीतल-सुगन्धित समीर समस्त संसार के निरोगी पुरुषों के हृदय में संचरित होकर नवीन तरंगे उत्पन्न कर रहा है किन्तु मेरे लिए तो मानों रोगों का संदेश लिए आ रही है, इस शीतल समीर के स्पर्श से मेरा हृदय कंपायमान हो उठा। मानों जुकाम ने चुनौती दे दी हो। यह अवस्था देखते ही घर लौट पड़ा, किन्तु जुकाम के कारण सिर में पीड़ा हो रही थी। यहाँ तक कि घर तक पहुँचना भी अत्यन्त कष्ट-प्रद हो गया। अन्त में घर पहुँचकर मैंने चिकित्सा प्रारम्भ कर दी किन्तु परिणाम-स्वरूप जुकाम बढ़ता ही गया। मैं कविराज वैद्य था। कई एक डाक्टर भी मेरे मित्र थे। उनसे सम्मति लेने पर भी परिणाम कुछ न हुआ, अन्त में मैं अपने औषधालय में लौट आया। रोगी आते और मेरी यह अवस्था देखकर हंसते और पूछते-वैद्य जी ! यह क्या हुआ ? आप को भी जुकाम ने धर दबाया! मैं इसके उत्तर में कह देता कि भाई! ऋतु-परिवर्तन हो रहा है, इसी कारण हम में भी परिवर्तन हो रहा है, इसके अतिरिक्त और कोई उत्तर था भी नहीं।

मेरे पास भी तो रात-दिन जुकाम से दिमागी कमजोरियों वाले अनेक रोगी आया करते थे और

मैं भी विविध प्रकार की औषधियाँ देकर उनका धन बटोरा करता था और उन्हें ढांढस दिया करता था, किन्तु औषधियों का लाभ किसी-किसी को होता था। औषधियों द्वारा रोग की पूर्ण निवृत्ति न होने पर मैं अत्यन्त दुखी हुआ करता था, किन्तु रोगियों के दुःख दूर करने में असमर्थ रहा। अधिक क्या ? मैं स्वयं भी रोगग्रस्त था। उसी रेशे (जुकाम) के कारण मेरे केश दूध की तरह श्वेत हो चुके थे, दाँत पीड़ित रहते थे, वायु का विकार भी इसी प्रकार कष्टप्रद था, किन्तु अभी तक ऐसी औषधि प्राप्त नहीं हुई थी, जिससे इस रोग से पूर्णतया छुटकारा पा सकता। मेरा हृदय बारम्बार मुझे धिक्कारता कि वैद्य बन कर क्या किया, केवल दूसरों को धोखा देने और धन बटोरने के लिए ही वैद्य कविराज बने थे ! अस्तु। मेरे हृदय में अत्यन्त पश्चाताप होता था। उसी क्षण मेरे हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि कौन सी औषधियों का सेवन करते थे, जिसके कारण उन्हें रोग छूने भी नहीं पाता था। उनके मस्तिष्क संसार भर से उत्तम थे। उनके संस्कार उज्जवल और पवित्र थे। वे अपने बल से संसार को चकित कर देते थे, किन्तु उनके जीवन में कहीं भी औषधि-सेवन का वर्णन नहीं आया। ऋषियों ने वेदों से भाष्य किए और अपने उत्कृष्ट अनुभवों को संसार के सम्मुख रखा। इससे यह सिद्ध हुआ कि उनके पास कुछ ऐसे सदुपाय अवश्य थे, जिनसे वे अपने शरीर की ग्रीष्म ऋतु की तेज ज्वाला व शिशिर ऋतु में हिम की शीतलता से रक्षा करने में पूर्ण-शक्ति रखते थे और सैकड़ों वर्षों तक अपनी अवस्था को बलिष्ठ रखने में समर्थ थे। उनके मन इतने बलिष्ठ थे कि कोई भी रोग उनके समीप न आता था। ऐसे भाव मेरे दिल में उठे और वहीं बन्द कर लिए गये। कुछ काल व्यतीत होने के पश्चात मैंने किसी सज्जन के पास 'घेरण्ड संहिता नामक पुस्तक देखी। मैंने भली प्रकार उसका स्वाध्याय किया तो मुझे उसमें अनेक साधनों का वर्णन मिला, किन्तु ये साधन मेरी समझ में नहीं आते थे। उसी पुस्तक में मैंने यह श्लोक भी पढ़ाः-

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्तिच।।

इस श्लोक का अर्थ है कि नेति कपाल को शुद्ध करती है, दिव्य दृष्टि (नजर) को देती है, जत्रु अर्थात् कंधों से ऊपर के भाग के समस्त रोगों को नष्ट करती है।

यह नेति एक सूत्र की डोरी है जो नासिका में डाल कर मुख से निकाली जाती है। यह पढ़कर मैं चकित हो गया कि सूत्र की डोरी नासिका में किस प्रकार जा सकती है ? फिर मुख से कैसे निकाली जा सकती है ? और इससे किस प्रकार ऊपर लिखे रोगों की निवृत्ति हो सकती है ? यह पढ़कर मुझे महान् आश्चर्य हुआ। घर आकर मैंने नेति करने का प्रयत्न किया तो नेति नासिका में न जा सकी और नासिका से रुधिर बह निकला और सिर चकराने लगा। अन्त में मैंने उसे वहीं छोड़ दिया और महात्माओं की तलाश में रहने लगा, कुछ दिनों के परिश्रम के बाद दिल्ली में मुझे एक महात्मा मिले जो कि नेति-क्रिया सिखलाते थे, किन्तु उन्होंने नेति सिखलाने की फीस १०० रु. रखी थी। इतना रुपया न होने के कारण मैं निराश था। पुनः मैं यत्न से ५० रु. लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ और मैंने प्रार्थना की कि मैं पूर्ण फीस देने में असमर्थ हूँ, मेरे पास केवल ५० रुपये हैं, इसे स्वीकार कर मुझे नेति-क्रिया सिखला दीजिए, किन्तु उन महाराज जी ने मेरे रुपयों को ठुकरा दिया और कहा कि हमने भी तो १०० रु. नेति का अधिकारी देखने के लिए रखे हुए हैं। अन्त में मुझे निराश होकर लौटना पड़ा, मैंने महात्माओं को ढूँढना उसी प्रकार प्रारम्भ रखा, किन्तु कई वर्ष

महात्माओं और साधुओं की संगति करने पर भी मुझे कोई ऐसे साधनों से सम्पन्न महात्मा न मिला। इससे मेरा हृदय विकल हो उठा किन्तु इस पर भी मैंने महात्माओं का संग न छोड़ा क्योंकि मेरा यह नियम था, **"कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्।"** फलतः आज जगन्नियन्ता परमात्मा की कृपा से मुझे परम कृपालु गुरुदेव श्री १०८ श्री पण्डित रामलाल जी योगिराज महाराज जी से योग के सम्पूर्ण साधन प्राप्त हुए जिनसे मेरे समस्त रोग निवृत हो गए और उन्हीं सद्गुरु देवजी की आज्ञा से देश के सहस्त्रों रोगियों को अपने हाथों बिना फीस नेति-क्रिया सिखा चुका हूँ, और सैकड़ों रोगी जो कि दिमाग की दुर्बलता, कर्णेन्द्रिय का बहरापन, दाँतों की शिकायत, गले पड़ने, कंठमाला आदि रोगों से संतप्त थे उन्हें सुखी बना चुका हूँ। जुकाम से जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, नेति उन रोगों के लिए अमूल्य साधन है। मुझे कई भक्तों ने उत्साहित किया कि मैं नेति के विषय में अपना व श्री गुरुमहाराज जी का अनुभव लिखूं। श्री सद्गुरु जी के चरणों में मैंने साग्रहपूर्वक विनय की कि आपने मेरे सम्पूर्ण रोगों की नेति द्वारा निवृति की है, मैं इसका प्रतिदान आजन्म नहीं चुका सकता। उत्तर में श्री महाराज जी ने कहा कि यदि इसका प्रतिदान (गुरुदक्षिणा) देना चाहते हो तो वह दक्षिणा यही है कि इस समय भारतवर्ष ऐसे रोगों से अत्यन्त ही दुखी है और ऐसे दुःखी भारत-निवासियों के पास पैसा खर्च करने की शक्ति नहीं है और पैसा खर्च करने पर भी वैद्य या डाक्टर उन्हें पूर्ण आरोग्यता नहीं दे सकते इसलिए तुम रोगियों के दुःखों को परमार्थ भाव से दूर करने में लग जाओ। श्री महाराज जी की आज्ञा ही मेरे जैसे स्वार्थी पुरुष को आप भाईयों की सेवा करने के लिए प्रेरित कर रही है।

नेति-क्रिया का विवरण

कपाल (दिमाग) से लेकर कण्ठ-पर्यन्त जितनी नाड़ियाँ हैं, उन सब की शुद्धि के लिए जब नेति नाक में डालकर मुख से निकाली जाती है, उस समय मुख की क्या आकृति हो जाती है। नीचे से जो गर्मी के परमाणु दिमाग की ओर ऊपर उठकर काग को नीचे लटका देते हैं। इस काग का मल निकालने के लिए व गले की ग्रन्थियों को ठीक और साफ रखने के लिए नेति कराई जाती है। इसी प्रकार जिह्वा के ऊपर से लांघ कर कण्ठ से लेकर मस्तिष्क तक की सम्पूर्ण निर्बलता को दूर करने में नेति सफल हुई है। चित्र नं० १ में यदि भली प्रकार देखा जाए तो आपको पता चलेगा कि उसमें एक चिन्ह (G) नेति के पास है। यह ऐसा स्थान है कि जहाँ कण्ठ से लेकर मस्तिष्क तक की सब नाड़ियाँ एकत्रित होती हैं। हम जब नाक से श्वास लेते हैं, तो इसमें वायु से अमृत-रस (जो कि चन्द्रमा के कारण सर्वदा इस आकाश-मण्डल में हर समय उपस्थित रहता है) श्वास से अन्दर जाकर सब नाड़ियों को बलिष्ठ बनाता है और जो रस पहले विद्यमान है वह श्वास नासिका द्वारा अन्दर जाकर उसे शुद्ध और बलयुक्त बनाता है। इस रस को जो कि ठण्डा और मीठा है, हर एक मनुष्य जीभ और तालु की ओर लगाकर (उल्टा कर) एक ही क्षण में परख सकता है। जब तक यह रस अपनी ठीक अवस्था में रहता है तब तक कण्ठ से लेकर मस्तिष्क तक कोई रोग पास तक नहीं आने पाता, किन्तु जब आमाशय या हृदय से गर्मी खुश्की के परमाणु उठकर दिमाग में जाते हैं तो यही रस नजला के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि यही रस दिमाग की नाड़ियों में रुक जाए, तो स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है और सिर के बाल सफेद हो जाते हैं। नींद कम आती है और अन्त में मनुष्य पागल हो जाता है। इसी प्रकार कानों की ओर जाने से बहरापन होता है और दाँतों की ओर जाने से

दाँत गिर जाते हैं। इसी प्रकार नजला हलक से होकर आमाशय में गिरने से नाना प्रकार के रोग तथा गले में हंजीरें भी हो जाती हैं अर्थात् कपाल (दिमाग) के मल के दूषित होने से नजला बिगड़ जाता है। यही नजला यदि विष वाला होकर गले में रुक जाय तो कंठमाला हो जाती है और इसी से क्षय रोग हो जाता है, क्योंकि हंजीरें के साथ ही ज्वर हो जाता है। अन्त में बढ़ते-बढ़ते पेट में हंजीरें हो जाती हैं। इन सम्पूर्ण रोगों को नेति द्वारा दूर करने का उपाय आगे लिखा गया है। इन सब नाड़ियों में एक गुण यह भी है कि नेति जब इन पर अपना दबाव डालती है तो यह अपना सम्पूर्ण मल इस प्रकार छोड़ देती है, जिस प्रकार दबाव से स्पञ्ज जल को छोड़ देता है। नेति को नाक में डाला जाता है तो सबसे पहले यह नासा नाड़ी से जाकर टकराती है, जिससे छींके आनी प्रारम्भ हो जाती है और इसके साथ ही मल शीघ्र ही बाहर निकल भागता है। इससे भली प्रकार ज्ञात हुआ कि नेति बलगमी मल (कफ) इत्यादि को शांत कर देती है। यदि यह अशुद्ध रस शुद्ध न किया जाय तो यही बढ़कर नाना प्रकार के रोगों का कारण बन जाता है। जुकाम, खांसी, दमा, गलों का पड़ना, हंजीरें, नेत्र-रोग, कर्ण रोग, दांतों के रोग, सिर के रोग, तपेदिक, यक्ष्मा इत्यादि रोगों को दूर करने के लिए नेति जादू का सा प्रभाव रखती है। नेति नासा-नाड़ी को शुद्ध करके मस्तिष्क की समस्त नाड़ियों को शुद्ध करने का एक उच्च साधन है। नेति का प्रभाव नीचे लिखी नाड़ियों पर होता है :-

No.3. Zybomatic Nerve- हनुनाड़ी : जिसका हनु से सम्बन्ध है (कान और ठोड़ी के बीच के स्थान को हनु कहते हैं)।

No.4. Posterior Dental-पाश्चात्य दन्त नाड़ी : जिसका सम्बन्ध दाँतों के पिछले हिस्से से है।

No.5. Palpebral-वर्तम नाड़ी : जिसका आँखों की पलकों से सम्बन्ध है।

No-6. Ant. Sup. Alveolar-अर्ध हनुनाड़ी : जिसका हनु के ऊपर के भाग से सम्बन्ध है।

No.9. Buccinator Nerve-कपोल नाड़ी : जिसका गालों से सम्बन्ध है।

No.10. Labial Nerve-ओष्ठ नाड़ी : होंठों से सम्बन्ध रखने वाली नाड़ी।

No.11. Mental Nerve.-चिंबुक-नाड़ी : ठोड़ी से सम्बन्ध रखने वाली नाड़ी।

इसी तरह पिछले हिस्से की नाड़ियाँ ये हैं-

No.14. Facial Nerve.-मौखिक नाड़ी : जिसका सारे मुँह से सम्बन्ध है।

No.15. Auriculotemporal-शंख कर्ण नाड़ी : सुनने से सम्बन्ध रखने वाली नाड़ी।

No.16. Infer Alveolar N.-अधो हनुनाड़ी : हनु के निचले भाग से सम्बन्ध रखने वाली नाड़ी।

No.17. Hyo Glossus-हनु जिह्वा नाड़ी : हनु और जिह्वा से सम्बन्ध रखने वाली नाड़ी।

No.18. Mylohyoid N.- हनु कण्ठ नाड़ी : जिसका हनु और गले से सम्बन्ध है।

इन सभी नाड़ियों के शुद्ध होने से मस्तिष्क भली प्रकार अपना कार्य करता रहता है। यदि इन नाड़ियों में विकार उत्पन्न हो जाए, तो वृहद् मस्तिष्क अपना कार्य भली प्रकार नहीं कर सकता, जिससे इसके केन्द्र निज कर्तव्य छोड़ देते हैं। और ऐसा होने पर शरीर में विविध प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार लघु मस्तिष्क भी अपना कार्य सम्पादन नहीं कर सकता। इसी प्रकार सेतुहानव नाड़ी व कागगल ग्रन्थि आदि कंधों के ऊपर के सभी अंग नेति करने से सर्वदा के लिए विकारों से मुक्त हो जाते हैं और सिर, नाक, कर्ण, नेत्र, सभी-अंग नजले से बचकर निज कार्यों को भली प्रकार करते रहते हैं। (क्रमशः)

सिद्धयोग (मासिक) के आय-व्यय का वार्षिक विवरण

(अप्रैल २००१ से मार्च २००२ तक)

आय			व्यय		
विवरण	*रुपये*	*पैसे*	*विवरण*	*रुपये*	*पैसे*
१. नगद जमा राशि कार्यालय में 31 मार्च २००२ तक	–	–	**१. प्रिंटिंग प्रेस भुगतान** छपाई व कागज आदि	७७,६००	००
२. ग्राहक शुल्क			**२. डाक टिकिट**	४५८०	००
(अ) वार्षिक	६८७१८	००			
(ब) आजीवन	१६१५०	००	३. कार्यालय खर्च स्टेशनरी, गोंद, लिफाफा आदि	५००	००
३. सहयोग राशि					
कृष्ण शर्मा, नूरी गेट, आगरा	१००	००			
अनिरुद्ध प्रधान, गाजीपुर	२०००	००	**४. रिक्शा भाड़ा** आगरा प्रेस जाना आदि	३००	००
परशुराम	११००	००			
मोहरसिंह, झरिया	२००	००			
महेश गोयल, मुरार, ग्वालियर	११००	००	**५. बाइंडिंग १५ सेट** (वर्ष २००१ से २००२)	२२५	००
श्रीमती प्रभा अग्रवाल, ग्वालियर	५०१	००			
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा	२०२२	००			
			बैंक में जमा	११६६८	००
	६४८६१	००		६४८६१	००

SIDDHYOG Regd. No. L.AG. 008

मई - 2002

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

(196)

श्री जयकृष्ण अग्रवाल

खेडिया भवन लोअर

रानीबाड़ी रोड झरिया

धनबाद (झारखण्ड)

828111

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।

तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

कठोपनिषद २/२/१३

अर्थात् - जो नित्यों का भी नित्य है, चेतनों का भी चेतन है और अकेला ही इन अनेकों जीवों के कर्मफल भोगों का विधान करता है, उस अपने अन्दर रहने वाले पुरुषोत्तम को जो निरन्तर देखते हैं उन्हीं को सदा अटल रहने वाली शान्ति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं ।

JHARIA 828111

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा [illegible] राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326

सम्पादक–आचार्य ब्र० (डा.) दासलाल शर्मा